

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182989

UNIVERSAL

UP-24-44-69-5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/553Vi

Accession No. H2771

Author

शशि, गो. प.

Title

उत्तम

This book should be returned on or before the date last marked below

उत्सुकन



[कीमत दो रुपये]

प्रकाशक—

मन्मो प्रसाद, लक्ष्मण प्रसाद शर्मा

हृदय प्रकाशन मन्दिर

बनारस

H 2770

विश्वविद्यालय

का छात्र उमेश ने

पितृहीन बालिका लता के नैराश्य

जीवन को किस प्रकार सार्थक बनाया

आदि बातें जानने के लिये इस पुस्तक को आद्योपांत अवश्य पढ़ें

मुद्रक—

शि० प्र० कला प्रेस

कबीर चौरा

बनारस

लेखक—
गोकुल प्रसाद शर्मा 'विशारद'

प्रकाशक—
सदय प्रकाशन मंदिर
बनारस

विभिन्न लेखन-शैली के रचतिया—

शमशीर	—श्री युत गोविन्द सिंह—	२)
बीरे से घूँघट हटाये पिया	"	२॥)
बगावत	"	३)
बहार	"	२)
बदलते रास्ते	"	४)
अफिला	—श्री युत सोमनाथ 'अकेला'—	२॥)
गारों की छैयाँ में	"	२)
झंगार बिछी राहें	—श्रीयुत लालजी पाण्डेय 'अनजान'—	२॥)

उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त
हमारी अन्य प्रकाशित पुस्तकों
के लिए बड़ा सूचीपत्र
मुफ्त मँगाकर
आर्डर
भेजें।

लेखक की अन्य अमूल्य निधियों के लिए प्रतीक्षा करें

उलझन



शिवपुर गाँव के जमींदार ठाकुरजी का परिवार गाँव भर में ऐश्वर्यवान ही नहीं, अपितु एक बहुत प्रतिभा-सम्पन्न था। आप ठाकुर महोदय का शुभ नाम था “दिनेशचन्द्र ठाकुर।” जैसा कि ठाकुर साहब का नाम से ही विदित होता है, वे एक इने-गिने व्यक्तियों में से थे। उनके समान ख्याति प्राप्त करना कोई सुगमता की बात नहीं है! आप अपनी मर्यादा को एकछत्र कायम रखने के लिये भरसक प्रयत्न किया करते थे और साथ ही साथ इस पुनीत कार्य के लिये आपने कोई कसर उठा नहीं रखा था। आप अपने पिता के इकलौते पुत्र होने से आप इस महान सम्पत्ति के एकमात्र मालिक थे और पिता के अथक परिश्रम द्वारा उपार्जित ऐश्वर्य को आप यों हि मिटी में मिला देना नहीं चाहते थे। पिता की पसीना के एक एक बुंद का महत्व समझकर आपने सम्पत्ति को उसी प्रकार व्यय करने का निश्चय किया, जिस प्रकार एक लायक पुत्र अपने पिताकीमर्यादा को उज्ज्वल बनाये रखने के लिये अग्रणीत विघ्न-वाधाओं को भेलता हुआ अंत में विजय-पताका फहराकर ही साँस लेता है।

अब पाठक श्रीमती ठकुराइन के स्वभाव से परिचित हों। ठाकुर साहब जितने ही गंभीर सहनशील, कर्तव्यपरायण तथा एक उच्च कोटि के व्यक्ति थे, आप ठकुराइन में उदंडता, कृतघ्नता और असहनशीलता का परिणाम उतना ही अधिक था। आपके पिता उतने धनवान तो न थे, पर उनकी हार्दिक इच्छा यह थी कि आपका पाणिग्रह किसी एक ऐसे व्यक्ति से कर दी जाय जो आपकी सुन्दरता से मुग्ध होकर आपको चिर-संगिन बनाये रखने में कोई आना-कानी न करे। आप अपनी बहनों में सबसे रूपवती थी और और इसी रूप का परिचय आपने ठाकुर साहब के सम्मुख देकर अपने को एक समृद्धशाली व्यक्ति के घर में पाया और आज उस घर की अधिष्ठात्री भी हुई। ईश्वर ने आपके पिता की मनोकामना पूर्ण की और साथ-साथ उन्हें एक बड़े भारी बोझ से भी मुक्त किया।

आज-कल ऐसी हवा ही चल गई है कि पहले रूप की प्रशंसा की जाय, पश्चात् गुण की। निर्धन व्यक्ति विवाह करने के पूर्व कन्या के गुण तथा चरित्र से अधिक प्रभावित होते हैं, पर आज-कल के पढ़े-लिखे तथा सम्य सम्राज में ऐसी बात नहीं दिखाई देती। विद्वान लोग तो अपने दिमाग में नई-नई बातों को ठूसने में ही रत रह जाते हैं। उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता कि वे दूसरों के गुण और दोष की समीक्षा करें। समय की लहर ने उन्हें ऐसे थपड़े दिये हैं कि वे अपने शरीर का सुध-बुध ही प्रायः भूल सा जाते हैं और उन्हें चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। यही कारण है कि वे विद्वान कहलाने के आदी तो हो सकते हैं, पर स्त्री की सुन्दरता के समक्ष उनका भी कुछ दश नहीं चलता। यही समस्या ठाकुर महोदय के सम्मुख उपस्थित हुई। आपने एक स्त्री की सुन्दरता के पीछे अपने सभी गुणों को अलग रहने दिया, जिसका फल आज आप स्वयं भोग रहे हैं। अब आपकी आँखें खुल गई हैं और घर की समस्या आप जितना भी सुलभाने का प्रयत्न करते हैं वह और भी अधिक उलभती दिखाई देती है। इतना होने पर भी आप अपनी सभी कमजोरियों को

दयाने का सबल प्रयत्न करते हैं और यह भी आशा रखते हैं कि आपके घर का भेद कोई भी बाहरी व्यक्ति जानने में समर्थ न हो सके। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए आप अपने गुणों का परिचय दे रहे हैं और यदि आप जरा भी चूक गये तो आपकी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जा सकती है।

ठाकुर साहब का एक पुत्र उमेशचन्द्र नाम का है। बचपन में सभी लोग उसे उमेश कहकर पुकारा करते थे। बाल्यावस्था में वह बहुत नटखट था और ऐसा कोई भी दिन न था जब कि उसने दो-चार लड़कों को न मारा हो। पड़ोस के व्यक्ति ठाकुर साहब के पास इस बात का उलाहना देना चाहते थे और जब वे ठाकुर साहब के बँगले के पास पहुँचते तो वहाँ रुके बिना न रहते। वे साहस ही नहीं कर सकते थे कि यह शिकायत उनके सम्मुख किस प्रकार पेश की जाय। बँगले की शानशौकत से ही उनका दिल दहल उठता था, फिर तो उलाहना देने की बात दूर रही। भला ऐश्वर्य के सुख में पला हुआ लड़का माँ-बाप की पटकार सुनने का भागी हो सकता है? इन्हीं बातों को सोचकर वे अपने अपने घर की शरण लेने में ही अपना भला समझते और वहाँ से चुपचाप लौट भी जाते थे।

अब उमेश कुछ बड़ा हो चला और पाठशाला भी जाने लगा था। इतना होने पर भी उसका नटखटपन न छूटा। उमेश के पिता अपने पुत्र को ठीक रास्ते पर लाने के लिये अपनी स्त्री से कह जाया करते थे, पर ठकुराइन इस बात की जरा भी परवाह नहीं करती थी। उसे यह जैसे पता ही न था कि थोड़ी सी लापरवाही द्वारा आगे चल कर वह किन-किन विघ्नों को स्वयं उपस्थित कर देगी। पति को सदा एक ही उत्तर देकर वह अपने को संतुष्ट कर लेती थी। उसका प्रत्युत्तर था - “लड़का तो समय आने पर आप ही सँभल जायगा।” इसका नतीजा यह हुआ कि सुख तथा वैभव में पला हुआ उमेश का भुकाव विलासिता की ओर अधिक होने लगा। यहाँ तक कि उसे विलासिता की वस्तुओं के अभाव में रहा ही नहीं

जाता था। सोते-जागते वह सुख का ही अनुभव करने लगा था और सुख का ही स्वप्न भी देखा करता था ! ठाकुर साहब को इतना अवकाश ही नहीं था कि वे अपने पुत्र की फिजूलखर्ची आदत को रोकें। फिर भी समय पड़ने पर वे कुछ डाँट-डपट कर अपने कार्य को करने चला देते थे। कभी-कभी वे यह भी सोचा करते थे कि बाप का इकलौता पुत्र इतना भी न करे तो और कौन कर सकता है ? यही कारण था कि आप अपने पुत्र पर अधिक दबाव डालना नहीं चाहते थे। हाँ ! कभी-कभी कुछ कड़े शब्द अवश्य बक जाया करते थे।

अब उमेश बाल्यावस्था लांघकर किशोरावस्था में पदार्पण कर रहा था। समय के जाते और सुख में पले हुए व्यक्ति के बढ़ने में देर नहीं लगती। इस समय उमेश की उम्र चौबीस साल की थी और इसी वर्ष वह बी० ए० की फाइनल परीक्षा में बैठने ही वाला था। उसने त्रिगुण परीक्षाएँ तो किसी तरह पास कर ही लिया था, पर अब उसे मालूम हो गया कि बी० ए० की पढ़ाई कोई मामूली खेलवाड़ नहीं है। उसे यह भी ज्ञान होने लगा कि इस कक्षा की पूर्ण तैयारी करने के लिए कठिन तप और साधना की जरूरत है। इस दर्जे को अच्छे नम्बरों से पास करना उतना ही कठिन है जितना कि एक महात्मा को मुक्ति पाने के लिये अपने शरीर को काँटे की तरह सूखाना पड़ता है।

उमेश जान-बूझकर ऐश्वर्य को यों ही बिल्वेर देना न चाहता था। जैसे कि उसकी आदत बन गई थी धन के मद में वह अपने आप तक को भूल जाता था और सम्पत्ति को तृण के सरीखे समझकर व्यय करने में विवश था। अपने कुछ झूठे साथियों की चालबाजी में पड़कर वह अपने कर्तव्य तक को भूल गया था। यहाँ तक कि वह खाना भी ठीक समय में न खाया करता और सिनेमा तथा थिएटरों को देखने के लिये वह कुछ साथियों के साथ शहर में आधी रात तक घूमा करता था। वह तो अब अपने गाँव के घर में था नहीं जहाँ वह जमींदारी के कामों को देखकर भी

समय व्यतीत करता। बोर्डिङ्गहाउस के निवासी होने तथा विश्वविद्यालय का छात्र होने का भी उसे गर्व था। इस सुअवसर में वह अपनी जिद्दी को बरबाद करना न चाहता था। खर्च को कमी का अनुभव करते ही चन्द घण्टों के अंदर घर जाकर वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेता था। पिता की अनुपस्थिति में वह अपनी कई आवश्यकताओं को दिखाकर किसी न किसी तरह माँ से कुछ रुपये वसूल करके ही दम लेता था। रुपये पाने पर वह भट् अपने स्थान को वापस चला आता था। माँ बेचारी भी सोचती थी कि लड़के का जीवन सुख-पूर्ण व्योत हो और उसे किसी भी वस्तु की कमी न खटके। वह माँ की आन्तरिक विचारों को ताड़ गया था और इसी कारण समय-समय में वह किसी और वस्तु के बढ़ाने पर पटुंचकर माँ से कुछ रुपये पा ही जाता था। माँ भी यह सब क्या जाने कि उसका पुत्र रुपयों को किस कार्य में पानी की तरह बहाता है।

शहर में ही एक सुन्दरी लड़की रहती थी। उस बालिका का नाम लता था। वह एक गरीब परिवार में पली थी। बचपन में ही उसके पिता स्वर्ग सिधार गये थे और उसकी माँ ने उसका लालन-पालन किया। पिता द्वारा आर्जित थोड़ी सी जमीन और एक गाय तथा रहने के घर के सिवाय लता की और कुछ सम्पत्ति न थी। उसकी माँ ने जमीन के टुकड़ों को ईश्वरीय-देन समझकर उनकी उचित व्यवस्था की। इससे खेत की उपज बराबर बढ़ती जाने लगी। पिता की मृत्यु के समय लता सिर्फ चार साल की थी। उसकी माँ विद्या से बहुत प्रभावित थी और यही कारण था कि लता आज द्वितीय वर्ष की छात्रा हो पाई थी। माँ के कठिन परिश्रम से ही वह इतना भी पढ़पाई थी। इस बात को तो लता जानती ही थी साथ-साथ माँ की उपस्थिति में वह धन के महत्व से अभी परिचित न थी।

इस समय लता पूरे जीवन की सीढ़ी पर चढ़ चुकी थी। अठारह वर्ष की आयु रखनेवाली उस बालिका को अब कुछ दुनियावी बातों का भी ज्ञान हो चला था। वह कभी-कभी यह भी सोचा करती थी कि यह समय उसके

लिये व्यर्थ गँवाने का समय नहीं है। समय एक अमूल्य वस्तु है और उसे एक बार हाथ से खो देने पर पुनः प्राप्त होना कठिन है। इसके पहले वह जी-तोड़ परिश्रम द्वारा अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिये पठन-पाठन कार्य में हमेशा ही संलग्न दिखाई देती थी। वह यह भी समझती थी कि संसार में दो वस्तुएँ अचला मानी जाती हैं, एक तो बालिका और दूसरी गाय। उन्हें जिस किसी के हाथ में भी बेच दिया जाय, उसके साथ जाना ही पड़ता है। वह खरीदार भले ही उन्हें उचित रास्ते की ओर ले जाय अथवा उनसे अनुचित व्यवहार करे इतना जानते हुए भी लता कुछ भी करने में असमर्थ थी। वह इन बातों को सोचते-सोचते थक सी जाती थी। इसीलिये अपने जीवन स्तर को ऊँचा बनाने के ख्याल से वह अध्ययन में अधिक परिश्रम करती हुई दीख पड़ती थी। वह दिल में सोचती थी कि धन के अभाव में भी विद्या के बल पर वह जहाँ भी जाये उसे दो रोटी मुख से खाने को मिल ही जायेंगे। इसके अतिरिक्त हो सकता है कि पढ़ी-लिखी कन्या का पति भी पढ़ा-लिखा ही हो। यदि पुरुष और स्त्री दोनों पढ़े-लिखे हों तो उनके भविष्य का मार्ग अवश्य ही निष्कट हो सकता है। पढ़ा-लिखा हुआ व्यक्ति और किसी दूसरी वस्तु की प्राप्ति के लिये उतना लालायित नहीं रहता, जितना कि एक अपढ़ व्यक्ति रहता है। विद्या से प्रभावित व्यक्ति अपनी औकात को जानते हुए किये हुए सुकर्मों द्वारा अवश्य ही अपने परिवार का भरण-पोषण भली प्रकार कर सकता है। लता ऐसे ही व्यक्ति की तलाश में थी और दिल में यह सोचकर कि वह भूल न कर जाय, पग-पग में बड़ी होशियारी से कदम बढ़ाती थी। वह चाहती थी कि वह ऐसे व्यक्ति के घर में जाय जो उसकी मनोभावों को समझकर उनके अनुकूल कार्य करने का सतत प्रयत्न करे। इन्हीं सब बातों को वह बड़े गम्भीर रूप से सोचती थी। उसे भय था कि उसकी एक छोटी सी भूल द्वारा उसके सोचे हुए भविष्य के जीवन में एक बहुत बड़ा उथल-पुथल मच जाय। यही कारण था कि इस समस्या को हल करने में उसे

बहुत-कुछ समय लगा ।

×

×

×

×

×

उमेश का भी हाल बुरा हो चला था । वह यह सोचता था कि न जाने वह कैसी स्त्री के पल्ले में पड़े । जमाना अब ऐसा नहीं रह गया है कि अपनी अर्धांगिनी की खोज के लिये माँ-बाप से सलाह लेनी पड़े । यदि अपनी इच्छानुकूल स्त्री न मिली तो विवाह कैसा ? माँ-बाप द्वारा खोजी गई कन्या पति के घर आने पर यदि उसका स्वभाव अपना एक अलग स्थान रखता है तो उमेश ऐसी स्त्री से अपना संबंध नहीं रखना चाहता तथा इस प्रकार की शादी को वह लात मारने तक तैयार था । इन्हीं विचारों का वह गंभीर-चिंतन किया करता तथा यह बात उसकी सभक में ही नहीं आती थी कि उसका भविष्य इस प्रकार सुखमय हो । वैसा कि प्रायः कॉलेज के छात्र कॉलेज की छात्राओं से प्रेम करने लग जाते हैं, ठीक उसी प्रकार उमेश ने भी अपने दिल में एक प्रेमिका के लिये स्थान रखा । वह बड़े असमंजस में पड़ गया कि एक अनजान बालिका को वह अब । परिचय किस प्रकार दे । किसी से प्रेम करना तो सहज है, पर अपने मनोनुकूल प्रेमिका द्वारा प्रेम किया जाना तो बड़ा कठिन पड़ता है । इसके लिये त्याग की आवश्यकता होती है । बिना त्याग के प्रेम मिल ही कहाँ सकता ? उमेश यह भी करने को तैयार था । भला ऐसा न करे तो उसकी इच्छाएँ दिल के अन्दर ही दबी रह जाँय और वह पछुताता रहे । उस समय उसे मन मसोसकर रह जाने के सिवाय और कुछ भी हाथ नहीं लग पाता । अब उमेश ने दृढ़-निश्चय किया कि वह इस कार्य के लिये हमेशा तैयार रहेगा ! अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये उसे भले ही रूपों को पानों की तरह बदलना पड़े इसकी परवाह वह बिल्कुल नहीं करता । बिना कठिन परिश्रम और तप तथा लगन के अच्छी सफलता भी तो मिलना दुर्लभ है । भाग्यवशात् उमेश को एक ऐसी बालिका मिल ही गई जो अनुपम सौन्दर्य की राशि थी । उमेश जब भी उसकी ओर देखता वह अपने होठों पर

मृदु मुस्कान भर देती और उमेश को उसकी भाव-भंगिमा समझने में देर न लगती। प्रत्युत्तर में उमेश भी मधुर हँसी हँस देता और इस प्रकार दोनों क्षण भर के लिये लज्जा से गड़ जाते थे। धीरे-धीरे दोनों में अपना-अपना परिचय देने की भावना जागृत हो उठी। एक दिन ध्या को लता अपने घर का ओर जा ही रही थी कि इतने में उमेश ने उसे देख लिया। अब वह लता के पीछे-पीछे हो लिया और कुछ दूर तक बिना कुछ बोले हुए चला। इसी तरह कितनी देर तक वह लता का पीछा करता। ऐसा सोचकर वह लता के बगल में से होकर आगे निकला और लता की तीक्ष्ण बुद्धि ने उसे पहचानने में भूल न की! अब बेचारी लता समझ हो नहीं पाई कि वह क्या करे। यही सुअवसर था कि वह उमेश से उसका परिचय प्राप्त कर सकती। उसे यह भी विश्वास हो गया कि उमेश अब उसका पीछा नहीं छोड़ सकता। वह भट् उमेश से आगे बढ़ गई और रुड़ कर एक गली में चल दी। अब उमेश से न रहा गया। उसने लता से उसका नाम, पता तथा होते-होते उसका पूर्ण परिचय तक पूछ डाला। अपना परिचय देते समय लता अत्यंत लज्जित हो उठी थी और लज्जा के मारे टूटे-फुटे शब्दों में वह उमेश के प्रश्नों का उत्तर किसी प्रकार दे सकी थी। उमेश ने भी अपना हाल बता दिया। लता उमेश की बातों को सुनकर मन ही मन बहुत खुश हुई। इतने ही में लता बोल उठी कि उसका घर कुछ ही दूर पर रह गया है। उमेश ने बड़ी नम्रतापूर्वक 'नमस्ते' शब्द उच्चारण करके उदास मन लेकर लता से द्रिछुड़ने लगा और जिधर वह आया था उसी ओर चल दिया मंद-मंद हवा में मधुर ध्वनि से गूँजता हुआ 'नमस्ते' का शब्द उमेश को अपने पीछे से सुनाई पड़ा। वह जान गया कि लता ने भी उसका अभिवादन 'नमस्ते' कह कर की थी।

अब उमेश और लता में पूर्ण परिचय हो गया। दोनों अक्सर सड़क में संयोग से मिल जाते और उसी समय दो-चार बातें भी छिड़ जाती। बहुत दिनों तक दोनों का यही कार्यक्रम रहा। दोनों ही एक दूसरे के गुण

और दोष के बारे में विचार किया करते । उमेश अपने दिल में सोचने लगा कि वह कितने दिनों तक इसी प्रकार रहे । एक दिन जब उमेश ने लता से मुलाकात की तो उसने लता को दूसरे दिन बगीचे में मिलने को कहा लता दूसरे दिन शाम को बगीचे में जाने का आदा करके अपने घर की ओर चल पड़ी । उमेश संध्या को लता की प्रतीक्षा करके बगीचे में टहल रहा था । इतने में ही लता भी चली आई और दोनों में तरह-तरह की बातों हाने लगीं। उमेश ने लता को अपने प्रेमका परिचय दिया । लता ने भी बातचीत से उमेश को यह जना दी कि वह उमेश को अपने हृदय से चाहती है । उसी दिन संध्या के ही समय लता को अपनी सखी के यहाँ भी जाना जरूरी था । वह इसलिये अपना कार्य दिखाकर उमेश से छुट्टी पाई और अपनी सखी के घर की चल दी । उमेश भी कुछ देर टहलता हुआ बोर्डिंग हाउस की ओर अपना कदम बढ़ाया । इसी प्रकार वादानुसार दोनों उसी बगीचे में संध्या के समय एक दूसरे से मिलकर प्रेमालाप किया करते और सुख का अनुभव करते थे । लता अपने मन में बराबर सोचा करती थी कि वह उमेश के दोषों को भली-भाँति समझ ले और अपनी इच्छानुसार चले । इसके लिये वह बहुत प्रयत्न करती थी पर उमेश के चरित्र में वह लांछन लगा ही नहीं सकती थी । वह फिर अपने मन में सोचा करती थी कि यदि वह उमेश को अपने दिल में स्थान दे तो हर्ज ही क्या है ? छोकड़ा तो देखने में सुन्दर है और एक धनी जमींदार का लड़का होने के साथ-साथ पढ़ा-लिखा भी है । यदि इस तरह का वर मिले तो ऐसी कौन सी कन्या होगी जो उससे विवाह करना नहीं चाहती । लता इन्हीं बातों को सोचते-समझते अंत में वह इसी निष्कर्ष पर पहुँची कि उमेशको अपना सुहाग बनाने से वह अपनी सभी आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकती है । उमेश को अपना दिल देने में लता को कुछ भी संकोच नहीं मालूम होने लगा । वह अपने को उमेश के साथ बगीचे में पाकर बड़ी भाग्यवती समझती थी । उमेश भी उसके साथ बहुत ही अच्छा वर्ताव करता था और उसके लिये वह सब कुछ करने को

हर समय मौजूद रहता था। कभी-कभी बगीचे में एक साथ मिलने पर उमेश लता की गरीबी का भी जिक्र कर देता और लता को सहायता करने का वचन भी देता था। लता कहती थी कि उसकी सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं फिर तो गरीबी का सवाल ही नहीं रह जाता। उमेश कहता था कि वह लता के अतिरिक्त और किसी भी औरत को अपने घर पर न लावेगा लता भी कहती कि वह उमेश को दिलोजान से चाहती है। इस प्रकार जब दोनों एक साथ मिल जाते तो आपस में तरह-तरह की बातें किया करते और गगरेलियाँ मनाया करते थे।

दो

जब कोई व्यक्ति किसी प्रेमिका को अपने दिल से चाहता है तो वह अपने चारों ओर प्रेम का ही वृक्ष देखने लगता है। उस समय उसे यहाँ नहीं ज्ञात होता कि प्रेम का बीज तो बो दिया जाता है पर उसके फलने-फूलने में कितना समय लगता है। अब उमेश ने अपना दिल लता को समर्पण कर दिया था और लता ने उमेश को। इस प्रकार यह जान पड़ता था कि वे दोनों अपने-अपने दिल को वापस लेने के लिये कभी तैयार न थे ! इसके अतिरिक्त उमेश ने लता को यह वचन दिया था कि वह विवाह करेगा तो संसार की अन्य किसी बालिका से नहीं, बल्कि लता से ही। लता भी इस विचार से सहमत हो गई और वह भी उमेश को ही आजन्म अपनी मांग का सिन्दूर बनाये रखना चाहती थी ! इस तरह दोनों जब भी मिलते हृदय खोलकर आपस में बातें किया करते। न जानें वे दोनों किस सुख-स्वप्न में विचरते और पुनः मिलने पर अपने स्वप्न का हाल बताते। उन दोनों के शरीर देखने में तो दो थे, पर भीतर से दोनों की आत्मा एक ही थी। वे जब भी मिलते आजन्म एक साथ रहने के प्रश्न पर खूब विचार करते और उस मिसाल को हल करने का उपाय दब्र ने:

अंत में उन्हें एक ही रास्ता सूझता था और वह था, विवाह। विवाह द्वारा ही उनका सुखस्वप्न पूरा हो सकता था, नहीं तो उन्हें अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता था। उन दोनों के लिए यह असंभव था कि वे एक दूसरे के बिना रह सकें। एतदर्थ दोनों ने सदा एक साथ रहने के लिए कसम भी खा ली थी और वे किसी भी हालत में अपनी प्रतीज्ञा से डिग नहीं सकते थे। अब दोनों विवाह के द्वारा ही अपने प्रेम का पूर्ण परिचय देना चाहते थे। वे अक्सर कहीं भी मिल पाते तो उस समय अपने मोभायों को व्यक्त नहीं कर पाते। क्योंकि उनको बराबर इस बात का डर बना रहता था कि कहीं तीसरा व्यक्ति न उनकी बातों को सुन ले इस वजह से वे जहाँ भी मिलते वहीं खुलकर बातें नहीं कर पाते। हाँ, बगीचे में मिलने पर वे अवश्य अपने विचारों को प्रकट करते थे और कुछ समय तक आनन्द की तरंगों में हिलोरें मारने लगते थे। फिर भी थोड़े समय में उनके दिल की सारी बातें समाप्त न हो पातीं और फिर दूसरी बार मिलने के लिए किसी और दिन का प्रोग्राम बनाया जाता था। यही क्रम कई महीनों तक चलता रहा।

अब उमेश का दिल भी पढ़ने में पहले ऐसा न लगता था। यह स्वाभाविक ही है कि दो काम एक साथ अच्छे ढंग से नहीं हो सकते। उधर लता के साथ बगीचे में आनन्द करने का स्वप्न और इधर ऊँचे दर्जे की पढ़ाई। यह कहाँ तक संभव था ! उमेश कुछ देर तक तो किताब के पन्ने ही उलट कर रह जाता और हर पृष्ठ में उसे लता का स्वरूप ही नजर आता था। भला प्रेम के तीर से घायल हुआ विद्यार्थी अध्ययन में कहाँ तक संलग्न रह सकता है। वह कुछ समय तक किताब के पन्ने उलटकर थक जाने के पश्चात् थोड़ी देर तक आराम कर लेना चाहता था। विद्यार्थी पर लेटते ही वह अपनी आँखें मूंद लेता था और उस समय उसके विचार ही आपस में तर्क-वितर्क किया करते थे। एक ओर तो वह पढ़ाई के बोझ से लदा था और दूसरी ओर वह प्रेमलाप की बातें भी तो न भूल सकता था।

इन दोनों विषयों को वह तराजू के अलग-अलग पल्ले पर तौलता । उसे प्रेम का ही पलड़ा भारी होता हुआ प्रतीत हुआ । इस प्रकार अध्ययन में उसका दिल अब अधिक न लगता था । वह अपने कार्य को कल के बहाने टाल देता था । और पहले सुख के सागर में गोता लगाना ही उसे भला मालूम होता था । वह अध्ययन से प्रेमलाप की बातों का अधिक चिंतन करने लगा । वह मन ही मन कहता था कि जिन्दगी रहते दम तक पढ़ाई से पिएड न छूटेगा । सच्चा प्रेम तो जीवन में हर समय नहीं मिल सकता । एक बार उसे खो देने पर पुनः प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं है । इन्हीं सब बातों से उमेश का दिमाग चक्कर काटने लगता था और ऐसे अवसर पर वह थोड़ी देर विश्राम करना ही श्रेय समझता था । यही सोचकर वह लेटे-लेटे सो जाता और प्रेम का घायल व्यक्ति एक ही बार सवेरे जागता । रात भर वह खराटें ही लेता रहता और सिरहाने के के पास रखी हुई एलार्म घड़ी के बजने का शब्द भी वह न सुन पाता था । यही उमेश की पढ़ाई थी और यही थी उसकी गहरी नींद ।

विश्वविद्यालय का एक छात्र जिसे उमेश सुधीर कहकर पुकारता था, मनोविज्ञान का अच्छा विद्यार्थी था । वह उमेश को अपना हार्दिक मित्र समझता था । सुधीर अपने मन ही मन यह विचार करता रहता था कि उमेश का दिल आजकल पढ़ने में क्यों नहीं लगता । हो न हो इसमें कोई रहस्य की बात अवश्य है । नहीं तो एकाएक उमेश का विचार इतना शिथिल नहीं बदल सकता । यदि वह चाहता तो उमेश सारे भेद को जान सकता था । पर उसने ऐसा करना अच्छा न समझा । वह सोचता था कि किसी के कार्य में रोड़े धिखाना बहुत बुरा है । दूसरे के कार्य में बाधक होना तो वही व्यक्ति चाहता है जो अपनी उन्नति और अपने भविष्य का कुछ भी ग्याल न करता हो । यदि कोई व्यक्ति ऐसा करना चाहता है तो आप से आप उसके सारे भेद खुल जाते हैं और लोग उसकी अवनति देखना पसंद करते हैं । किसी कार्य को बिगाड़ना अत्यन्त नीचता का कर्म है ।

हाँ, यदि कोई व्यक्ति बुरे रास्ते पर जा रहा हो तो इस बात को जानते हुए भी उसे बुरे रास्ते पर जाने देना मनुष्यत्व नहीं। सुधीर चाहता था कि वह उमेश द्वारा ही उसके सारे भेद को जान जाय और उचित तथा अनुचित सोचकर अपना मन्तव्य प्रकट करे। उसे यह भी पूर्ण विश्वास था कि उमेश ने आज तक कोई भी बात उससे नहीं छिपाया है और आज वह क्यों क' छिपाता। उसे यह भी ज्ञात था कि उमेश किसी भी बात को सर्वप्रथम उसके सम्मुख ही पेश करता था। इन्हीं सब बातों को भज़ी-भाँति सोच विचार कर सुधीर ने टहलने के बहाने उमेश को भी अपने साथ ले लिया और दोनों मित्र टहलने के लिए शहर की ओर चल पड़े। वे दोनों टहलते-टहलते उसी बाग में पहुँच गये जहाँ उमेश और लता आपस में प्रेमालाप किया करते। अब दोनों में बातें होने लगीं।

सुधीर—“भाई उमेश ! मैं बड़े आश्चर्य में पड़ गया हूँ कि आजकल तुम्हें अध्ययन करते हुए पहले के ऐसा नहीं देखता। परीक्षा के सन्निकट होने पर तो जी-तोड़ परिश्रम किया जाता है। पर तुम्हें ऐसा काल मैं नहीं देखता।”

उमेश—“हाँ भाई सुधीर ! मुझे भी मालूम है कि परीक्षा के लिये अब थोड़ा ही समय रह गया है। उस पर भी यह फाइनल की परीक्षा है। यदि थोड़ा सा भी चूक गया तो परिश्रम बेकार चला जाता है।

सुधीर—“तुम्हें मालूम है कि यमराज का दूत सिर पर सवार है, तब भी तो तुम जरा भी नहीं सम्हलते। इतने दिनों का मिहनत तो एक ही बार दिखाना है। यदि इस पर भी पीठ दिखाया जाय तब तो भई ! बड़े मुश्किल की बात है।

उमेश—“सुधीर ! मैं क्या बताऊँ। आज-कल मेरी बुरी हालत हो रही है। घर से बराबर चिट्ठी आती है कि खूब दिल लगाकर शौक से पढ़ो और अच्छे नम्बरों से पास हो जाओ। घरवालों को यह क्या पता कि पढ़ना-लिखना कोई आसान काम नहीं है। इस कार्य के करने में तो खूब

और पानी को एक करना पड़ता है तब कहीं कुछ विद्या की प्राप्ति हो सकती है। इतना करने पर भी किसी विद्या में पारंगत नहीं कहा जा सकता। हाँ, कुछ विषयों में जानकारी अवश्य प्राप्त हो जाती है। मैं इस बात को सोचकर दाँतो तले उँगली दबाने लग जाता हूँ कि बड़े-बड़े परिणित लोग कितना कष्ट उठाकर अपने शरीर को तपाने के पश्चान् तब कहीं परिणित कहलाने के आदी हो सकते हैं। उसपर भी सभी व्यक्ति परिणित थोड़े ही कहला सकते हैं? इन्हीं बातों को सोचकर मैं कभी-कभी बेचैन हो उठता हूँ और उस समय तुम प्रायः देखते होगे कि मैं निद्रा-द्री की गोद में अटखेलियाँ करता रहता हूँ। अब तो मुझे मेरी सारी बातें समझ में आ गई होंगी।’

सुधीर—‘मैं जानता हूँ कि सभी विद्यार्थियों के घर से चिट्ठियाँ आती होंगी। छात्रों के संस्कार-गण अवश्य ही उन्हें पढ़ने में खुद दिला लगाने को लिखते होंगे। पर जो दशा मैं तुम्हारी देखता हूँ और किसी भी विद्यार्थी की नहीं देखता। तुम इस तरह की बातें न किया करो कि घर की फिक्र तुम्हीं को है और किसी को नहीं। मेरी हालत भी तुम जानते हो और भली-भाँति जानते हो। मैं भी तुम्हारे ही तरह का विद्यार्थी हूँ और अपने घर को तुमसे भी बहुत दूर छोड़कर यहाँ आया हूँ। तुममें और मुझ में अंतर सिर्फ इतना ही है कि तुम धनी व्यक्ति के पुत्र हो और मैं एक गरीब व्यक्ति का। तुम एक बहुत बड़े जमींदार के पुत्र ठहरे और मैं एक गरीब श्रमिक का, जिसे दोनों शाम अच्छा भोजन भी नहीं मिलता। तुम से अधिक घर की चिंता तो मुझे लगनी चाहिये थी। पर मैं देखता हूँ कि तुम दिन पर दिन शोक-सागर में डूबते जा रहे हो। मेरे सिर पर तो एक बड़ा परिवार का भविष्य है। इसके विपरीत तुम सिर्फ विद्याभ्यास के लिये रुपयों को पानी की तरह बहा सकते हो। ऐसा करना तुम जानते ही हो कि मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मेरे ऊपर जितनी जिम्मेदारियाँ हैं, उतनी तुम्हारे ऊपर नहीं। फिर भी मैं इन बातों की ओर जरा भी

ध्यान नहीं दिया करता। भाई ! घर के भूमेले में पड़ने से कहीं विद्या की प्राप्ति होना संभव है ? अब तुम्हीं बताओ कि यदि इस तरह की बात है तो तुम क्यों अप्रसन्न दिखाई देते हो और मैं क्यों फला-फूला हूँ ? यदि बुरा न मानो तो मुझे उन बातों को खुलासा बता दो जिनसे कि तुम रोज-ब-रोज अपने स्वास्थ्य को गिराते जा रहे हो। जैसा कि तुम मेरे स्वभाव से पूर्ण परिचित हो, मैं यह हिम्मत नहीं कर सकता कि मैं तुम्हारे घर का हाल जानने को तुम्हें बाध्य करूँ। सिर्फ इस बात को सोचकर कि तुमने आज तक मुझ से कोई भी बात छिपाने का प्रयास नहीं किया है, तुम्हारी आन्तरिक बात जानने के लिये अपने को उत्सुक देख मैं यह प्रश्न तुम्हारे समक्ष पेश कर सका। तुम न भी जवाब दो तो मैं तुम्हें मजबूर करना नहीं चाहता। यदि मैं तुम्हारे हित के लिये उचित प्रस्ताव दे भी सका तो शायद उसमें तुम्हारा कल्याण ही हो।”

उमेश—“भाई सुधीर ! बात तो तुमने ठीक बताई और मेरे हित की बात कही। तुम जानते ही हो कि इस जमाने में दूसरों के हित चाहनेवाले बहुत कम होते हैं और अहित चाहनेवाले अधिक। मैं यह कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि तुम मुझे बुराई की ओर अप्रसर करोगे। मैं तुम्हारे चरित्र में कभी भी लांछन नहीं लगा सकता। मैं अपने मित्रों में तुम्हें ही सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ। यह तो तुम भी हृदय से कह सकते हो कि मैं तुम्हें कितना अधिक चाहता हूँ। मैं अपने को भाग्यवान तभी समझता जब कि मैं तुम्हारे लिये कुछ कर सकूँ। वरना मैं अपने को तुम्हारे लायक कुछ नहीं समझता जब तक कि मुझ से तुम्हारी कुछ भी भलाई न हुई।”

सुधीर—“मैं तुम से भले ही कह रहा हूँ कि तुम मेरी सहायता करो। तुम तो कुछ ऐसी बातें कर रहे हो कि मैं तो कुछ समझ नहीं पाता। मैं पूछ रहा हूँ कुछ और तुम बक रहे हो कुछ और ही। तब तो तुम्हारी दशा और भी सुधीर।”

उमेश—“हाँ भाई ! अब याद आया। तुम यही पूछ रहे थे न कि

मैं आजकल चिंता में क्यों डूबा रहता हूँ मैं तो कहते-कहते कुछ और ही बक गया। तुम यही जानना चाहते हो न कि आजकल मेरी ऐसी दशा क्यों हो रही है ?”

सुधीर—“हाँ उमेश ! तुम्हें अब सुध आया। मालूम पड़ता है कि इस समय तक तो तुम अपने आपको भूल ही बैठे थे।”

उमेश—‘ना भाई ना, ऐसी बातें मत किया करो। उचित और अनुचित कहने का कार्य तो जीभ का है। तुम्हारा और मेरा इसमें दोष ही क्या ?”

सुधीर—“लो, फिर अब वही बातें कर रहे हो न ? खैर अब मुझे बीदा दो, मैं तो अब चला।”

उमेश—“अरे यार ! तुम भी वैसी अनोखी बातें कर रहे हो ? इतनी दूर तक तो आए साथ ही। तुम यह कैसे कहते हो कि मुझे अकेले ही छोड़कर तुम चले जाओगे।”

सुधीर—“तो क्या तुम स्त्री न हो। जहाँ चलूँ साथ ले चलूँ और फिर साथ ही ले आऊँ। भैया, यह तो स्त्रियों का व्यवहार है। तुम मर्द होकर स्त्रियों की सी बातें कैसे कर रहे हो ? मैं तो तुमसे बिल्कुल परेशान हो गया। मालूम पड़ता है कि पागलखाने में यदि तुम जल्द न जावोगे तो शायद लोग तुम्हें पागल समझ कर तुम्हारी हँसी उड़ाया करें।”

उमेश—“लोग मेरी हँसी उड़ाया करें, इसके लिये मुझे कुछ भी परवाह नहीं। तुम्हारे मुख से अभी-अभी स्त्री की चर्चा सुनकर न जानें मेरे विचार एकाएक क्यों बदल गये। मैं तो अब पूरे होश में हूँ। जरा समझ भी लो कि मैं पागल किस प्रकार कहला सकता हूँ। तुम्हारी बात भी बड़ी निराली हुआ करती है। अरे ! जो कहना हो कह डालो। तुम भी ता लम्बी-चौड़ी बातें कर रहे हो।”

सुधीर—“उमेश ! मालूम पड़ता है कि तुम किसी तितली के फंदे में फँस गये हो। भाई ! ऐसे फंदे से तो बड़ा बचकर चलना पड़ता है।

कहीं ऐसा न हो कि तुम अपने आपको भूलकर अपना सर्वस्व तक न्योछावर कर डालो। जानते ही हो कि प्रेम के पाश में पड़कर पत्थर जैसे कड़े हृदय वाले व्यक्तियों के दिल भी दहल जाते हैं। तुम और मैं तो कित खेत की मूली हूँ। अब मुझे मालूम आ कि तुम भी किसी प्रेमिका की मन मोहिनी मन्त्र में पड़कर अपने कर्तव्यों से व्यूत हो रहे हो। मित्र ! मैं तो इन सबों को दूर से ही प्रणाम करता हूँ और इनके पास तक नहीं फटकता।”

उमेश—“हाँ भाई, सुधीर ! बात तो कुछ ऐसी ही है।”

सुधीर—“तो फिर साफ-साफ क्यों नहीं कहते ? यदि कहने में लजाते हो तो आँखें बंद करके कह जाओ। अगर नहीं तो अपनी इच्छाओं को अपने दिल के अंदर ही छिपाये रखो। मुझ से भी बातें छिपाये रखना चाहते हो तब तो बड़े ताज्जुब की बात है। खैर अब देरी भी हो रही है। तुम भी साथ चलो तो अच्छा है, वरना मैं तो अब यहाँ भिनट मर भी नहीं रुक सकता।”

उमेश—“सुधीर भाई, यदि बुरा न मानो तो इस बात को किसी और दिन के लिये आज स्थगित रखो। उस दिन मैं पूर्ण व्याख्या करके तुम्हें सुनाऊँगा। विश्वास रखो, मैं यह कोई तुम्हें मजाक से नहीं कह रहा हूँ।”

सुधीर—“अब खाक विश्वास रखूँ ? जब तुमने इतनी देर तक टाल-मटोल की तो अब फिर क्या कहोगे ? कहना होता तो मेरे पूछते ही तुम कह डालते। दुनिया भर की बातें कहकर समय बरबाद किया और अब कह रहे हैं कि किसी और दिन कहेंगे। उमेश ! मैं किसी की बातें सुनने को लालायित नहीं रहता। न मैंने कभी तुमसे इसके लिये वाध्य भी किया है। हाँ, मैं इतना अवश्य चाहता था कि मैं तुम्हारी बातें का उचित जवाब दे सकूँ। अब देखता हूँ कि मैं तुम्हारे ख्याल से तुम्हारा सलाहकार तक नहीं रह गया।”

उमेश—“नहीं सुधीर ! ऐसा मत कहो। ये वचन तुम्हारे मुख से

निकलने लायक नहीं। हम दोनों एक ही घर में रहनेवाले सहोदर भाई की तरह हैं। मैं तो समझता हूँ कि हम दोनों एक ही पिता के पुत्र हैं। खैर यह भी तुम मजाक में कह डाले। तुम और हम पढ़ चुकने के बाद भी घनिष्ठ मित्र की तरह अर्थात् दो शरीर एक प्राण होकर रहेंगे। अभी तो हम दोनों जने साथ ही हैं। यह क्यों कर हो सकता है कि तुम मुझसे रुष्ट हो जाओ और मैं तुमसे मत-मुटाव करने लग जाऊँ।”

सुधीर—“मैं तुमसे रुष्ट नहीं हूँ। प्रथम तो मैं तुमसे क्यों नाराज होऊँगा। यदि कोप करने भी लगूँ तो तुम जैसे धनाढ्य व्यक्ति पर मेरा असर जल्द कैसे पड़ सकता है? यह सिर्फ समझ का फेर है। क्रोध करने वाला व्यक्ति तो स्वयं ही नष्ट होता है। फिर उसे क्रोध करने से फायदा?”

उमेश—“मैं तुम्हारी सभी बातों को हर समय मानने को तत्पर हूँ। तुम जैसे मित्र का मिलना दुर्लभ है। अब चलें भी। परीक्षा का समय भी तो थोड़ा ही रह गया है। जी तोड़ परिश्रम करना तो हम लोगों को ही है। न करेंगे तो सारी पढ़ाई चौपट हो जायगी तथा परिश्रम भी बेकार चला जायगा और उस पर भी घरवालों के कड़े शब्दों का बौझार तो सहना ही पड़ेगा। साथ-साथ पड़ोस के लोग भी दुतकरने लगेंगे और सारा का सारा व्यय यूँ ही धूल में मिल जायगा।”

तीन

उमेश और सुधीर चलते-चलते विश्वविद्यालय के अहाते में पहुँचे। सुधीर की बातों को याद कर उमेश की छाती में धड़कन पैदा हो रही थी और वह साँस को जोरों से चलने का अनुभव कर रहा था। उसे भट् याद हो आई कि इस विशाल भवन के कमरे के अन्दर रहकर उसे कठिन तप करना है। अब भी यदि वह लापरवाही करता है तो उसके सारे किये कार्य चौपट हो जायेंगे। सुधीर पर उसका पूर्ण भरोसा था। वह कभी

भी उमेश के दिल को दुखाने का अनुमान तक न लगा सकता था। उसकी सारी बातें अमूल्य थीं और थीं उमेश के फायदे की। उमेश ने एक ऐसे मित्र को चुनने के लिये जिसके दिल में कपट लेश मात्र भी न हो और जो अपने पैरों पर ही खड़ा रहना चाहता हो, भूल न की थी। सुधीर ऐसा मित्र मिलना उसके लिये अत्यन्त कठिन समस्या थी। उसके गुणों का वर्णन जितना भी किया जाय उतना ही थोड़ा है। इन्हीं सब बातों को सोचते हुए उमेश कमरे के अंदर चला गया और बिजली जलाकर पढ़ने के लिये जमकर बैठ गया। उधर सुधीर भी अपने कमरे की ओर चला गया। इतना करने पर भी उमेश का सिर चक्कर काट रहा था और वह इस बात का पता लगाने लगा कि आखिर उमेश माथे का दर्द कैसे हो आया। हाँ, तो उसे अब याद हो आई। वह भट्-उठा और बक्से को खोलकर लता का फोटो निकाल ही तो लिया। वह बार-बार उसे देखता और घूर-घूरकर देखता। क्षण भर में ही उसके होश-हवाश गुम हो गये और उसे अपने शरीर का धोक्सा सँभालना भी एक तरह से कठिन हो गया। उसे अब रहा नहीं गया और उस फोटो को पुनः बक्से में डालकर स्वयं खटिये पर लेट गया। वह मन ही मन कहने लगा कि वह सिर दर्द नहीं; बल्कि जीया का बेकरार है। वह फिर सोचने लगा कि यदि कुछ समय और उसकी यही दशा रही तो उसे पढ़ने-लिखने से हाथ धोना पड़ेगा। कहाँ से यह बला आ गई कि रात-दिन चैन भी नहीं लेने देती। किताबों के पन्ने में तो सिर्फ नीरस चीजें ही दिखाई देती हैं। एक छोटे-से फोटो ने ही उसकी सारी पढ़ाई-लिखाई को अलग रहने दिया। इस फोटो को जिस दृष्टि से देखा जाय उसीके अनुकूल ही वह फोटो दिखाई देता है। साहित्य के अच्छे-अच्छे सभी रस इस फोटो में विद्यमान हैं। किताब के पन्ने में तो एक भी रस दृष्टिगोचर नहीं होता। तिस पर भी इतने पैसे देकर इन आँखों में खटकनेवाली पुस्तकें खरीदने से फायदा ? यह सब जान मार डालने का प्रपंच है। हमारे बाप-दादे और मास्टर भी खूब हैं।

दूसरों को जाल में फँसाकर आप दूम दबाये भाग ही जाते हैं। मैं यह पढ़ाई-लिखाई कुछ भी नहीं चाहता। मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है कि उसका प्रायश्चित्त आज मैं करूँ ? न इसका कुछ मतलब हो और न इसमें कुछ रखा ही हो, मैं ही इसका फल भोगने को तैयार हो जाऊँ ? रात भर आँखें फाड़कर पढ़ना और सबेरे होते ही सब भूल जाना। यह कहाँ की पढ़ाई है और यह है कहाँ का न्याय ? कोई सुख मनावे और कोई अगणित कष्टों को भोले। यह मुझ से कभी नहीं हो सकता। हो सकता है कि मैं पढ़ाई-लिखाई को एकदम अलग रहने दूँ और चैन की वंशी बजाऊँ। कई दिवस तक उमेश की यही दशा रही।

उपर्युक्त बातों को सोचते-सोचते उमेश बहुत अधीर हो उठता था। वह इस नतीजे पर पहुँच ही नहीं पाता था कि अब वह क्या करे। वह ऐसे कार्य को ढूँढ़ने में लगा था कि पग-पग में उसे आनन्द ही आनन्द दिखाई दे। दूसरी बात यह भी थी कि वह विलासिता की चरम सीमा तक भी तो पहुँच गया था न। इन्हीं बातों से उसका दिमाग अपने ठिकाने पर नहीं रहता था। यदि कोई एक ही बार सभी बातों का समर्थन करने लगे तो उसका दिमाग कहाँ तक काम कर सकता है ? उमेश की ठीक यही दशा थी। यदि समय में ही वह अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति करने में चूक जाता है तो उसका जीना भी व्यर्थ है। कभी-कभी वह रजाई को दूर फेंक कर इन बातों का खूब मनन करने लग जाता था। पुनः सोचते-सोचते वह विकल हो जाता और आँखें मूँदकर गम्भीर-चिंतन करने लग जाता। इस प्रकार ठीक समय में उसका खाना-पीना भी हराम था और इस लिये उसका स्वास्थ्य भी दिन-पर-दिन गिरता जा रहा था। यह थी उमेश की दशा और यही था उसका क्रीडा-स्थल, जहाँ वह तरह-तरह के स्वप्न देखा करता।

आज की रात्रि उमेश ने किसी तरह काटना चाहा। उसने सोचा कि कल वह लता से अपनी कहानी सुनायेगा। संभव है कि लता उसकी दशा

को सुधारने का ठीक उपचार बतावे। पुरुष को स्त्री की आवश्यकता होती है और स्त्री को पुरुष की। ईश्वर ने भी खूब सोचकर इस लीला का सृजन किया है। यदि पुरुष चिंतानल में जलता हो तो स्त्री के सम्पर्क से उसे थोड़ी-सी शीतलता अवश्य प्राप्त हो सकती है। स्त्री को अपने सम्मुख पाकर पुरुष का रहा-सहा दुःख का भी निवारण हो सकता है। यह तो दवाओं की भी दवा है और फिर इसकी दवा संसार में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल सकती। इसी लिये कहा जाता है कि स्त्री का नाम अर्धांगिनी है। उसे पुरुष के किसी भी कार्य में आधे हिस्से का आधिपत्य मिला है। मेरा उपचार सिर्फ एक ही है और वह हैं एक बार पुनः लता से मिलकर अपनी सारी चिंताओं का खुलासा हाल बताना। इस दुःखदाई रात्रि को वह अच्छी तरह न काट सका। फिर भी किसी प्रकार सो ही गया और दूसरे दिन कुछ देर करके उठा। उसने सुबह के सभी कार्य जल्दीबाजी में कर डाले। अब वह अध्ययन के लिये चल पड़ा। रास्ते भर वह इसी धुन में था कि कब संध्या हो और लता से मिलने का मुअवसर प्राप्त होवे। ऐसे अवसर पर लता से मिलना उसे अनिवार्य था। यदि वह उससे मिलने का कुछ भी प्रयत्न न करे तो उसकी रही-सही शक्तियाँ भी काम करना छोड़ दें। इसी लिये यही उपाय उसे उचित जँचा और संध्या के आगमन को प्रेम से स्वागत करने के लिये उसका बाट जोहने लगा।

किसी तरह संध्या भी हुई और उमेश बोर्डिङ्ग-हाउस से निकल पड़ा। वह आज तक कभी भी लता के घर में नहीं गया था। उसे मालूम था कि लता का घर किस जगह पर स्थित है। इतना सोचकर वह एक बड़े भारी हृदय से कि कहीं लता से मुलाकात होगी या नहीं, उसके घर की ओर वह चल पड़ा। जैसे ही वह लता के घर के निकट पहुँचा लता के तीव्र नयनों ने उसे देख ही तो लिये। जब तक उमेश लता के घर तक पहुँचे, वह शिघ्र ही सीढ़ी से उतर कर बाहर आ गई। अब दोनों की

आँखें चार हो गईं और दोनों के दिल के अन्दर बिजली सी धारा दौड़ पड़ी। दोनों ही बगीचे की ओर चल पड़े। लता तो बड़ी प्रसन्न थी, पर उमेश का बड़ा बुरा हाल था। उमेश लता को पाकर खुशी तो अवश्य हुआ, पर आन्तरिक दिल से नहीं। लता उससे तरह-तरह की बातें पूछती। इस समय वह उमेश को निरुत्तर पाकर बड़े आश्चर्य में पड़ गई। उसने उमेश से खान में भी इस प्रकार की आशा न की थी कि वह मौन धारण करे। उमेश के इस भेद को जानने के लिये कि वह चुप क्यों है, उसके दिल में कौतुहल सा उपन हो गया। वह फिर सोचने लगी कि उसकी बात का जवाब तो उमेश सिर्फ हाँ या नहीं में ही देता है। इससे अधिक शायद वह उससे बोलना ही न चाहता है। यदि उमेश की यही इच्छा रही हो तो वह लता के घर पर किस प्रकार पहुँच सकता। इसमें कुछ रहस्य अवश्य है जिसको जान लेना लता के लिये परमावश्यक है। इस प्रकार लता यह जानने के लिये अत्यन्त व्यग्र हो उठी कि वह उमेश की सारी बातों को किस प्रकार जाने। वह मन ही मन इसका उपाय ढूँढ़ने लगी। उसे एक बहुत अच्छा उपाय सूझा। वह यह था कि वह उमेश को शपथ दिलाकर, पश्चात् सारी बातों को जान जाय। उसे यह भी विश्वास था कि उमेश उसके सामने झूठ नहीं बोल सकता और न तो वह उसे किसी प्रकार का कष्ट भी दे सकता था। यदि बात इस तरह की है तो दोनों ही खुलकर क्यों न बातें किया करें। एक का चेहरा प्रसन्न रहना और दूसरे का मलीन दिखाई देना कोई अच्छी बात नहीं। यदि दोनों ही प्रसन्न हों तो बातें भी बड़े मजेदार की होंगी और बीच-बीच में दोनों आनन्द-विभोर भी हो उठेंगे। ऐसा सोचकर लता कुछ देर तक चुप रह गई। इसके पहले उसने उमेश को कुछ कहने के लिए कसम दिलाई। अब बेचारा उमेश कब तक चुप बैठा रहता। इसलिये उसे कुछ कहने के लिये विवश होना ही पड़ा।

उमेश—“याही लता ! मैं क्या बताऊँ ? तुम्हारे बिना मैं क्षण भर भी

कुछ नहीं कर सकता। तुमने अपने पैने तीर द्वारा मुझे घायल बना दी है और अब मैं सँभल नहीं सकता।”

लता—“प्यारे! ऐसा मत कहो। मुझ में वह गुण कहाँ जिससे आप मेरे बिना रह नहीं सकें। आप इतने दिनों तक यो फले-फूले रहे, पर अब न जाने आपको कैसी हवा लग गई है।”

उमेश—“हाँ! बात तो तुम्हारी ठीक ही है। समयानुकूल अपनी परिस्थिति को भी बदलने में मजबूर हूँ। यदि ऐसा न किया जाय तो अर्थ का अनर्थ होने में कोई सन्देह ही नहीं।”

लता—“तो अब बताइये कि आपका सुखड़ा इतना मलिन क्यों दिखाई दे रहा है। इसमें कोई रहस्य की बात तो अवश्य है। यदि मुझ से भी आप कुछ कहने में संकोच मानें तब तो बड़े मुश्किल की बात है। इसका कारण मैं कदापि नहीं हो सकती। मेरे ऊपर दोषरोपण करना तो आपका एक दृढोत्सल मात्र है। मर्द जब भले-बुरे को अच्छी तरह पहचानने में असमर्थ हो जाते हैं तो वे स्त्रियों के ऊपर ही सभी जिम्मेदारियाँ छोड़ देते हैं। परवश नारी बेचारी क्या करे। आखिर उसमें भी तो जान है। जहाँ तक बन सकता है वहाँ तक वह कर भी सकती है। इसीलिए स्त्री मर्द की बात को सह लेती है। नहीं तो और का कुछ और ही हो जा सकता है।”

उमेश—“मैंने तुम्हें चिर-संगिनी बनाया है, इस तरह की बेतुकी बातें सुनने के लिये नहीं। मैं जानता हूँ कि सभी कार्यों में पहले मर्द का ही हाथ रहता है, पश्चात् नारी का। यदि कोई भी कार्य भिगड़ भी जाता है तो मर्द ही दोषी ठहरते हैं, भले ही उसमें औरत का भी हाथ हो। मैं नहीं कह सकता कि ऐसा क्यों होता है।”

लता—“मैं आपसे यह नहीं कहती कि आप सांसारिक बातों से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। आपने मुझे अपनी प्रेमिका बनाकर मेरा बहुत कुछ उद्धार किया है। इसके लिये मैं चिर-श्रुणी रहूँगी। अब आपके प्रति मेरा यह

कर्तव्य हो गया है कि आपके दुःख-सुख में मैं अपना भी हाथ बटाऊँ । साथ-साथ मैं यह भी समझती हूँ कि आजन्म मुझे आपके साथ रहना है । मुझे अभी तक याद है कि एक बार आपने मुझ से बगीचे में कहा था कि यदि हम दोनों का बन्धन विवाह द्वारा दृढ़ हो जाय तब फिर क्या था । प्रेम का पूर्ण परिचय उसी समय मिल सकता है, अभी नहीं ।”

उमेश—“लता ! मैं भी तो यही चाहता हूँ ; शायद मैंने कोई भी बात तुमसे नहीं छिपाई है । आज तुमने भी अपनी आन्तरिक अभिलाषा को प्रकट कर दी है । इसके लिए मैं धन्य हूँ और तुम्हें हार्दिक बधाई देता हूँ ।”

लता—“नहीं-नहीं ! इस बधाई को आप अभी अलग रहने दीजिये ! जब हम दोनों के दिल एक हो जायेंगे तो फिर आप जो कहें । अभी तो डोरा बहुत कच्चा है । इसकी मजबूती के लिए तो कुछ परिश्रम और समय भी चाहिये । बिना इन दोनों चीजों के जल्दी बाजी का कार्य अच्छा नहीं होता । अतः आपसे यही अनुरोध है कि यदि मैं इस कार्य के लायक हूँ तो आप जैसा उचित समझें करें । मुझे सहर्ष अंगीकार है ।”

उमेश—“लता ! भला तुम अनुचित बात कभी मुँह से उच्चारण भी कर सकती हो ? उस पर भी मेरे सामने ? तुम्हारी बात को अनुचित जानकर मैंने कब तुम्हें उचित राय दी है ? इसका उत्तर तो तुम भी देने में शायद असमर्थ हो । अब तुम्हीं बताओ कि जब तुम इस तरह की बातें किया करती हो तो मैं क्या उत्तर दूँ ।”

लता—“मैं यह सोचकर कह रही हूँ कि ऐसा न हो कि कहीं आप जाति-विरादरी देखने की ओर न लग जायँ ।”

उमेश—“ओह ! तुम भी यह क्या बक रही हो ? प्रेम के रास्ते में जाति-विरादरी का मूल्य ही क्या रह जाता है ? यह तो एक टकोसला मात्र है । इसी के फेर में पड़कर कितने मनुष्यों के दिल-दिमाग ही बदल गये । जिसके साथ वे प्रेम करने लग जाते हैं समाज के डर से उन्हें एक

साथ भी रहने को मना है। यदि पुरुष और स्त्री में जाति का कुछ भी भेद भाव हुआ तो उन्हें अपना घर छोड़कर बाहर ठोकें खानी पड़ती हैं। आज तक समाज में ही पला हुआ व्यक्ति आज किस प्रकार उससे अलग हो सकता है? भला यह कहाँ का न्याय है कि कोई अपना दिल किसी को देकर पुनः वापस ले ले। यदि मैं इन सब बातों को मानता तो तुम्हें क्यों अपने गले का हारें बनाने को उद्यत रहता? तुम ऐसी बातें मत किया करना। इसमें मेरा दिल फट जाता है और मैं कहीं का नहीं रह जाता।”

लता—“मान लिया कि आप उक्त कथन के लिए सहमत हैं। पर अभी आपके माँ-बाप दोनों ही जीवित जो हैं? यदि उनको यह बात पसन्द न आई तो मेरा उस समय क्या हाल होगा, आप जैसे पढ़े-लिखे व्यक्ति को समझने में कुछ देर न लगेगा। उस समय मेरी जिम्मेदारी तो आपको देनी होगी। यदि वह जिम्मेदारी गुस्तर हुई तो शायद आप भी उस भार को वहन करने में असमर्थ हो जायें। ऐसा न हो कि आप एक रास्ते से चलें और आपके घरवाले दूसरे रास्ते से। ऐसा होने पर मजबूर होकर आपको अपना घर छोड़ना ही पड़ेगा और तब दूसरे नये समाज की शरण लेनी पड़ेगी। इस प्रकार आपको कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और उन पर विजय पाना कोई मामूली बात नहीं। फिर भी मैं आगे कहती हूँ कि आप पुनः ज्ञान-चक्षु से विचारकर उचित रास्ता ढूँढ़ लें।”

उमेश—“मुझे इसके लिये किसी और व्यक्ति से कुछ भी सलाह लेने की आवश्यकता नहीं। और न मुझे इससे अधिक और कुछ सोचना ही है। मैंने जो सोचा है वह ठीक ही सोचा है और उमीद करता हूँ कि भविष्य में उसका नतीजा अच्छा ही निकलेगा। तुम इसकी कुछ भी चिन्ता न किया करो। मेरे रहते हुए भी तुम्हें ग्लानि होते देखना, मुझे बिलकुल पसंद नहीं।”

लता—“अच्छा, तो आप यह बताइये कि इस समय आप किस संकट में पड़ गये हैं जिससे आपका शरीर दुर्बल होता जा रहा है।”

—उमेश—“बस, और कुछ नहीं। अभी-अभी जिस बात में चर्चा हो रही थी उसी को सुलभाने के लिये दिन-रात सोचता रहता हूँ। मैं सोचता हूँ कि मैं तुमसे कब मिल पाऊँ जिससे मैं अपने दिल में शीतलता का अनुभव करूँ। तुम्हारे फोटो ने तो मुझे विकल कर दिया है। उसे देखे बिना मुझे क्षण भर भी कल नहीं पड़ता।”

लता—“हाँ! तो आपने यह क्या अनर्थ कर डाला? मुझे अब तक यह भी मालूम नहीं कि आपने मेरा फोटो कब उतारा। मेरे रहते हुए भी आप मेरे फोटो को देखा करें, यह उचित नहीं। इतने दिनों तक तो आपने उस फोटो के बारे में मुझ से कुछ भी बताया तक नहीं। जल्दीबाजी में उतारे हुए फोटो को देखते-देखते भी आपका यह हाल? मैं तो आपसे अलग नहीं हूँ कि आप बराबर मेरा फोटो ही देखते रहें। यदि आप बुरा न मानें तो वह मुझे वापस कर दें।”

उमेश—“लता! जब तुम्हारी यही राय है तो मुझे स्वीकार है। कल तो रविवार है। मैं कई दिनों से घर भी नहीं गया हूँ। कल तड़के ही घर की ओर चलने का प्रोग्राम बनाया हूँ। यदि घर न गया तो भिलूँगा ही। वरना एक दिन के लिए दुःख न मानना।”

लता—“हाँ, तो आप घर अवश्य जाइये। पर घर के वैभव की ओर दृष्टि डालकर मुझे एकदम भूल मत जाइयेगा।”

उमेश—“तुम भी क्या अजीब बातें करती हो। अब भी तुम संदेह की दृष्टि से ही देख रही हो तो मैं इससे अधिक और क्या कहूँ? तुम स्वप्न में भी यह कभी मत सोचो कि मैं तुम्हारी कुछ खबर ही न लूँ। मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ यह तो तुम खुद ही बता सकती हो। उस पर भी इस तरह की बातें करना तुम्हें नहीं भाती। तुम तो स्वयं सब कुछ समझती हो और इससे अधिक मैं कहाँ तक तुम्हें समझ सकता हूँ।

एतदर्थ तुम्हारी इस तरह की बातें सुनकर मैं समझ ही नहीं पाता कि मैं किस प्रकार तुम्हें खुश रखने का प्रयास करूँ ।”

लता—“आप को मुझे प्रसन्न करने की कोई आवश्यकता नहीं । मैं तो खुद प्रसन्न हूँ, पर आप आइने में अपना मुँह देखिये कि इधर कुछ दिनों से आपके चेहरे में कितना अन्तर आ गया है । मैं भी इसका कारण न समझ सकी थी और इसी लिये आपसे पूछने को बाध्य थी । अब आप अपनी दशा को सुधारने का सफल प्रयत्न करें । मैं तो आपकी हूँ और सदा आपकी ही होकर रहूँगी ।”

उमेश—“जब तुम्हें यह सब मालूम है तो फिर इस तरह की अनोखी बातें क्यों करती हो ? मैंने तो एक बार कह दिया कि तुम मेरे ही ऊपर निर्भर रहो । मेरे घरवाले चाहे मुझे जो कुछ भी कहें या करें इसकी परवाह तुम बिल्कुल नहीं करना । इसकी चिंता तो मुझे है, तुम्हें नहीं । सिर्फ मेरे ऊपर तुम अपना अटल विश्वास जमाये रखो और पूरा भरोसा रखो । अपना भार मेरे ऊपर छोड़ दो । इस भार को मुझे ही सहना है और अंत समय तक सहना है ।”

लता—“मैं कब कहती हूँ कि मैं आप पर विश्वास नहीं रखती । मैंने अपना सुहाग तो आपको ही बनाई है और अंत समय तक आपकी दासी होकर रहना मुझे स्वीकार है ।”

उमेश—“दासी ? ना, ऐसा मत कहो । बल्कि यह कहो कि एक सेज पर सोनेवाली रानी ! एक रानी को जितना सुख प्राप्त हो सकता है उससे कम तुम्हें न होगा । हाँ, तुम्हें मेरे कथनानुसार चलना होगा और यदि मैं गलत रास्ते पर अग्रसर भी होने लगूँ तो तुम्हें अच्छा मार्ग दिखलाना होगा इतनी जिम्मेदारियाँ यदि तुम अपने ऊपर लेती हो तो फिर देख लेना कि हम दोनों की सुहागरात सदा हरी-भरी रहेगी या नहीं । बस, इससे अधिक तुम्हें और कुछ नहीं करना है । समझ गई न मेरी बात ?”

लता—“हाँ प्यारे ! आपकी सभी बातें मैं समझ जाती हूँ । आपने तो मेरा बहुत कुछ किया, पर मैं एक अचला नारी आपके लिए कहाँ तक क्या कर सकती हूँ ? उस पर भी मेरे पिता जीवित नहीं हैं । धन्य है मेरी विधवा माँ । जो अपनी लड़की के लिए अपना प्राण तक समर्पण करने को रात दिन तैयार रहती है । यदि वह कठिन तप और लगन में मुझे अध्ययन में सहायता देती तो न जाने आज मेरी क्या दशा होती । दूसरे के घर में जानेवाली पुत्री पर भी माँ का वात्सल्य अभी तक उधों का लो ही बना है । उसे इस बात का शायद डर है कि कहीं मैं उसकी इज्जत में कालिख न लगा दूँ । आप खुद जानते हैं कि आप जैसे विशाल हृदय वाले पुरुष को मैंने अपना चिरसाथी चुनकर अपने को कृतार्थ की । इसके लिये मैं ईश्वर को सैकड़ों धन्यवाद देती हूँ और साथ-साथ आपके भावी कार्यक्रम के लिये मैं हृदय से ईश्वर को मनाता हूँ ।”

उमेश—माँ का वात्सल्य समझनेवाली तुम जैसी नारी को धन्य है । धन्य है तुम्हारी आत्मा को जिसने अपने पति की पहचान के लिये भूल न की ।”

लता—“पति ! ओह ! कितना दर्दनाक शब्द आपने बोला ! पति बनने के पहले ही आप पति की धोषणा कर चुके ? खैर, ईश्वर ही भला करे ।”

उमेश—“तो क्या इसमें भी अब कुछ शक रह गया है कि मैं तुम्हारा पति न कहलाऊँ ? ईश्वर स्वाक भला करेगा ? नहीं इस पुनीत कार्य को तो तुम और हम मिलकर ही भला बनावेंगे । हम लोगों के कार्य में ईश्वर क्या स्वर्ग में उतर कर हाथ बंटाने लगेगा ? वह तो सिर्फ मले-बुरे कार्यों की जाँच करता है । ईश्वर-फिश्वर को मैं कुछ नहीं मानता । मैं यही मानता हूँ कि आत्मा ही ईश्वर है और उसी की प्रेरणा से हम अपने कार्य में अग्रसर होते हैं । यह तो अंधविश्वास मात्र है कि ईश्वर हमारे सभी कार्यों में साथ देता है और यदि हम उसकी उपासना नहीं करते तो वह

हमें दण्ड देता है। किसी का सोलह वर्ष का होनहार पुत्र मर जाता है तो उस समय ईश्वर कहाँ तुम दवाकर लिप्रा रहता है ? उसे तो उसी समय प्रकट होकर अपनी योग्यता का परिचय देना चाहिये न ? पर होता है ठीक इसके विपरीत। इस प्रकार तुम्हारे और हमारे प्रेम को जोड़नेवाले सिर्फ दो हैं। एक तो है तुम्हारी आत्मा और दूसरी मेरी। यदि हम दोनों के दिल एक हैं तो ईश्वर कुछ नहीं कर सकता। अब तो शायद तुम जान गई होगी कि हम दोनों के प्रेम को तोड़नेवाला आर काई नहीं है। यदि है भी तो सिर्फ दो हैं, एक तो हो तुम और दूसरा मैं।”

लता—“हाँ ! मैं भी तो इसी विचार में सहमत हूँ। एक कॉलेज की लड़की को इतना भी ज्ञान न हो तो उसकी सारी पढ़ाई लिखाई बूढ़ा गोबर हो जाय। वैसा आपका विचार है, मेरा भी ठीक वही है। अब आपको कार्य सिर्फ इतना ही करना है जिससे हम दोनों चैन की वंशी बजावें।”

उमेश—“तो अब परसों शाम को लुः बजे इसी जगह पर मिलने का प्रोग्राम रखो। खयाल रखना कि यदि मुझे कुछ देर भी हो जाय तो तुम इसकी चिंता न कर मेरी प्रतीक्षा करना। ऐसे तो मैं ही तुमसे पहले यहाँ पहुँचने का प्रयत्न करूँगा। अच्छा तो अब बीदा दो, फिर तो मिलना है ही।”

लता—“हाँ ! तो अब परसों इसी जगह पर मिलेंगे न ? खैर जाइये और कार्य को सफल बनाते आइये।”

उमेश—“तो अब मैं चला।”

इतना कहकर उमेश वहाँ से चल पड़ा। वह होस्टल के कमरे के अन्दर पहुँचा और कपड़े बदलकर रात्रि-पोशाक पहन लिया। अब उसे चिंता अधिक नहीं सता रही थी। क्योंकि एक ओर तो उसे घर जाने का कौतूहल था और दूसरी ओर लता से पुनः मिलने की खुशी थी। उसका चेहरा अब कुछ प्रसन्न दिखाई देने लगा और शोक के चिह्न प्रायः मिट

सा जाने लगे। उसने पुनः एक बार लता के फोटो को निकाल कर देख लिया और उसे स्नेहपूर्वक चूम लिया। उसे ऐसा लगा मानों चित्र भी हँस रहा है और वह कुछ देर के लिए आनन्द-विभोर हो उठा। उसने उस चित्र को कोट के हवाले किया और स्वयं पढ़ने के लिए बैठ गया। इस समय भी उसे पढ़ने में जरा भी इच्छा न थी। वह सिर्फ आँखों को गड़ाये हुए कितान के पन्ने की ओर देखता हुआ पन्ने को उलटने में ही व्यस्त था। उसका दिमाग तो शायद कहीं और था। फिर भी बहुत देर तक वह कितानों की ओर देखता ही रह गया। अखबार पढ़ने में भी उसने कुछ समय बीता दिये और सदा की भाँति वह आज भी सो गया और सुख-स्वप्न देखने लगा।”

चार

उमेश सवेरे ही उठ गया। वह अपने सवेरे के कार्यों से निवृत्त होकर घर जाने की तैयारी करने लगा। घर पहुँचने पर ही स्नान करने का उसका इरादा था। वह आज बहुत दिनों पर घर जाने की तैयारी करने लगा। उसके मन में एक केवल यही बात थी कि वह लता से विवाह-बंधन को टूट करने के लिए माँ-बाप से परामर्श लेने को ही घर जा रहा है। सभी वस्तुओं को यथा-स्थान रखकर उमेश साइकिल पर सवार हुआ और अपने घर की ओर चल पड़ा।

जाते जाते उमेश को अपना गाँव कुछ दूर से ही दिखाई देने लगा। इस समय अरुणोदय भी हो चला था और चिड़ियाँ भी चहचहाने लगी थीं। चारों ओर हरे-हरे वृक्ष थे और खेतों में हरी फसल लगी थी, जो आँखों को बहुत भाती थी। कुछ किसान-वर्ग अपने-अपने खेतों में निगोड़े भी कर रहे थे। कुछ तो आली पर अपने खेतों की ओर नजर डाले हुए दिखाई देते थे। अपने-अपने हाथों में लिये हुए लठी तथा सिर की पगड़ी ही उनके देहातीपन का परिचय देते थे। कुछ स्त्रियाँ घास छीलने

के लिये बगल में टोकरी दबाये और हाथ में खुरपा लिए हुए जा रही थीं। कुछ तो रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहने हुए थीं और कुछ मटमैले रंग के। उनके बाल भी हवा में हिल रहे थे और रह-रह कर उनके कपड़ों पर आघात करते थे। शायद उन्हें बाल-सँवारना भी पसंद न था। वे आपस में बातें करती हुई खेत की ओर जा रही थीं और बात के मिलसिले में हँसती भी थीं। लम्बे-लम्बे ताड़ के पेड़ ही शिवपुर ग्राम की सूचना देते थे। उन पेड़ को देखने से ऐसा मालूम होता था कि जैसे वे आसमान को छूने के लिए अपने सिर को ऊपर उठाये हुए हों। ऐश्वर्य से सम्पन्न उस शिवपुर ग्राम में प्रवेश करते ही किसका मन-मयूर न नाच उठता हो। उसी गाँव में से होकर एक नदी भी बहती थी। नदी का जल शांत और स्वच्छ था। संधरे के समय सूर्य की लाल-लाल किरणों के पड़ने से उमेश को ऐसा लगा जैसे कि साने की ही सरिता बह रही हो। कुछ लोग उसी नदी में से होकर एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर जा रहे थे। वहाँ जानवर भी पानी पी रहे थे और साथ-साथ चिड़ियाँ भी। नदी के स्वच्छ जल में चाँदी के समान मछलियाँ भी तैरतीं नजर आती थीं। कभी-कभी वे जल के ऊपर भी आ जातीं और फिर छपाक से जल के अन्दर विलीन हो जातीं। इस प्रकार जी यही चाहता था कि उनकी अटखौलियाँ बराबर देखते रहें। उसी समय कुजड़े सिर पर टोकरी रखे हुए कुछ तो शहर की ओर जा रहे थे और कुछ गाँव की ओर। किसान के छोटे-छोटे बच्चे मैसों पर चढ़े थे और उनका डोर थामे हुए थे तथा हर एक के पास एक-एक लाठी भी थी। पानी के कम होने से नावें उस समय नहीं चल रही थीं और वे किनारे में गाड़े गए खूंटियों के सहारे बँधी थीं। इस समय तो नदी में चलकर ही उस पार जाया जा सकता था। अब उमेश इन रमणीय दृश्यों को देखता हुआ आनंद में मग्न हो उठा और साइकिल को थामे हुए वह किसी तरह चलकर नदी के दूसरे किनारे पर पहुँचा।

अब उमेश सड़क पर आ गया था। यह सड़क उसके बाप दादों की बनाई हुई थी, जो उसके गाँव की मुख्य सड़क थी। उस समय के जमींदारों ने जनता की सुविधा के खयाल से इसे बनाये थे और पश्चात उमेश के पिता ने कुछ खर्च लगाकर इसे मरम्मत करवाया। गाँव भर में यही एक अच्छी और चौड़ी सड़क थी। उमेश उस सड़क के दोनों ओर के खेतों की हरियाली का तथा सुबह की अनुपम लूया का आनन्द लेता हुआ साइकिल पर जा रहा था। वह मन ही मन प्रकृति को धन्यवाद देता हुआ अपने रास्ते को तय कर रहा था। वह कहता था कि प्रकृति भी धन्य है जो अपनी सुन्दरता की रूप राशि को यूँ ही बिखेर देती है। जो भी मनुष्य बिना किसी मूल्य के लुभाये ही उसकी सुन्दरता पर अपना अधिकार जतला सकता है। इन्हीं सब बातों को सोचते हुए उमेश अपने दिल में अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। सड़क पर उसे कुछ किसानों से भी भेंट हो जाती थी जो उमेश को आदर की दृष्टि से देखते थे और उसका रास्ता छोड़ देते थे। अब उमेश फूला न समाया जब कि वह अपने घर के निकट पहुँचा। वहाँ कुछ किसान वर्ग बैठे हुए कंकड़ आदि पी रहे थे। उन्होंने ज्यों ही उमेश को देखा वे तुरन्त उठ खड़े हुए और उसका अभिवादन कर उसकी आज्ञा के लिए तत्पर होते दिखाई दिये। यहाँ पर उमेश को कुछ देर तो रुक ही जाना पड़ा। किसानों ने उमेश से कुशल-क्षेम पूछा और उमेश ने भी अपनी कुशलता का परिचय दिया। पुनः वह साइकिल पर सवार होकर अपने घर के दरवाजे तक पहुँच ही गया। एक नौकर ने भट् उमेश के आगमन का खबर घर में दे दिया। उस समय ठाकुर साहब भी घर में ही विराजमान थे। अब वे अपने पुत्र की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय उमेश की माँ खाना बना रही थी और रसोई घर के अन्दर थी।

अब उमेश आँगन में पहुँचा और पिताजी ने उसे देख लिया। वह साइकिल को एक नौकर के हाथ थमाकर पिता के पैरों को स्पर्श किया। उनके

पैरों की धूली उसने अपनी आँखों पर लगा लिये। ठाकुर साहब के आज्ञानुसार वह उनके बगल में बैठ गया। जाड़े का मौसम था और ठाकुर महोदय हुक्का पीते हुए अपने पुत्र से समाचार प्राप्त करने लग गये। वे कुछ कागज-पत्रों को भी अपने सामने रखे थे।

ठाकुर साहब—“कहो बेटा ! आजकल कैसे रहे ?”

उमेश—“अच्छा ही तो रहा, पिताजी। सब आपकी कृपा है।”

ठा०—“तो इस बार तुम बहुत दिनों पर दिखाई दिये। क्या इसका कारण छुटी न मिलने का था ?”

उ०—“नहीं पिताजी ! ऐसा नहीं। छुटी तो बीच-बीच में बराबर मिलती ही थी।”

ठा०—“तो फिर इतने दिनों के बाद कैसे नजर आये ?”

उ०—“क्या बताऊँ, पिताजी ! परीक्षा सिर पर सवार है। यही कारण था कि परीक्षा के सबब से मैं जल्द न आ सका। आज भी मुझे यहाँ आने की इच्छा न थी। यह सोचकर कि आपके दर्शन न हुए बहुत दिन हो गए ; इसीलिए इस ओर कदम बढ़ाया हूँ।”

ठा०—“क्या परीक्षा अब बहुत निकट है ?”

उ०—“हाँ पिताजी ! अब सिर्फ दो ही महीने रह गये हैं। इसी बीच अपने समूचे पाठ को तैयार करना है।”

ठा०—“तुम उसी कार्य में संलग्न रहकर घर न आ पाये थे न ?”

उ०—“जो हाँ ! बात तो कुछ ऐसी ही है दूसरी बात यह भी थी कि घर पहुँच कर मुझे कुछ खास कार्य तो अभी करना न था। यही सोचकर एक ही बार परीक्षा कि समाप्ति पर यहाँ आने का विचार था। यही कारण है कि इस बार मैं बहुत दिन बिताकर आप का दर्शन कर सका।”

ठा०—“खैर, खर्च-बर्च तो चल ही रहा है न ? उसे होशियारी से चला रहे हो न ? कहीं ऐसा न हो कि मेरी सभी आशाओं में पानी

फिर जाय। खर्च के मद में पड़कर बहुधा विद्यार्थी अपनी पढ़ाई से वंचित रहते हुए दिखाई देते हैं। इसीलिये विद्यार्थी-जीवन एक बड़े कष्ट का समय है। यदि उस समय कठिनाइयों को वर्दास्त करने में चूक जाते हैं तो सारा का सारा किया चौपट हो जाता है मेरा जहाँ तक ख्याल है तुम सफलता-पूर्वक अपने सभी कार्यों को करते रहे होंगे।”

उ०—“हाँ पिताजी ! यह समय तो कठोर तप का समय है ! फिर इसमें चैन ही कहाँ ? यदि जरा सा भी मचला तो रही-सही सभी आशाएँ दसरा रूप बदलने लग जाती हैं। इतना होने पर भी एक बात यह भी है कि किताबों के कीड़े बने रहने से विद्यार्थियों को विद्या कहाँ ? उन्हें कुछ आराम करने की भी आवश्यकता पड़ती है और इसीलिए उन्हें कई प्रकार के खेल भी खेलने पड़ते हैं। मैं भी कुछ समय निकाल कर बगीचे में टहल लिया करता हूँ। फिर तो अपना कार्य करना ही है।”

ठा०—“तो मैं तुम्हें यह थोड़े ही कहता हूँ कि तुम अपने स्वास्थ्य की जग भी परवा न करो ? पहले जान तब जहान। देखो न, कितनी अच्छी उक्ति है ! स्वास्थ्य ही ठीक न रहने से शरीर किस काम का ? कोई भी कार्य बिना शरीर से किये होना असंभव है। इसलिये तो पुराने जमाने के ऋषि-महर्षि कन्द-मूल फल खाकर ही कई बरस तक जिन्दे रह सकते थे और वे बराबर अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करते थे। स्वास्थ्य ही दुनियाँ में सबसे बढ़कर है। इसीलिये मेरी भी यही राय है कि अपने स्वास्थ्य का विशेष ख्याल रखकर अपना कार्य सफल बनाने में कभी न चूकना।”

उ०—“यही तो मैं भी सोचता हूँ और अपने स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान रखकर अपने कार्य में तल्लीन रहता हूँ।”

ठा०—“तो अब कुछ दिन रहोगे न ?”

उ०—“रहता तो ! पर समय जो नहीं है, पिताजी !”

ठा०—“फिर क्या करोगे ?”

उ०—“कल ही तो चल दूँगा। सिर्फ रविवार की छुट्टी बिताने आया हूँ। एक दिन से अधिक विश्राम कहाँ ? परीक्षा के सन्निकट होने से आजकल पढ़ाई भी जोरों से चल रही है इस समय भी मुझे यहाँ न आना ही अच्छा था। पर क्या करूँ। आपके दर्शन का भी तो कुछ फिक्र था यही सोचकर चल पड़ा हूँ और अपनी मनोकामना पूर्ण होते देख रहा हूँ।”

ठा०—“अच्छा, तो यह बताओ कि आजकल तुम दुबले-पतले किस प्रकार हो गये ? आँखें भी भीतर घँस गई हैं जैसे वहाँ दो गड्ढे बन गये हों। मैंने खान-पान में कभी करने के लिए कभी कहा तो न था। मैंने यह भी कहा था कि शक्ति दायक वस्तुओं को भी प्रयोग में लाना। मालूम पड़ता है कि तुमने मेरी बातों को निरर्थक समझ कर कुछ भी ख्याल न किया। यह तो तुम्हारे ही फायदे के लिए मैंने कहा था न ! फिर आखिर ऐसी दशा क्यों ?”

उ०—“पिताजी ! मैंने खान-पान में कभी कभी न की है। ऐसी बात तो है नहीं कि जो जितना खाये वह उतना ही मोटा हो जाय। संतुलित आहार से ही स्वास्थ्य ठीक रह सकता है, यह हमारे प्रोफेसर साहब की उक्ति है फिर भी मैं बराबर खान-पान की वस्तुओं में विशेष ध्यान देता हूँ। दूसरी बात यह भी है कि न जाने आपके रहते मुझे घर की फिक्र क्यों लगती थी। एक ओर तो जी-तोड़ परिश्रम करना और दूसरी ओर चिंता के भार को सहना पड़ता था। फिर तो शरीर ही ठहरा। यही कारण है कि मैं आजकल कुछ दुबला-पतला दिखाई देता हूँ।”

ठा०—“इस प्रकार तुम कितने दिनों तक रह सकते हो ? घर की चिंता तो मुझे है, तुम्हें नहीं फिर भी तुम इस तरह की बातें कर रहे हो कि मैं कुछ भी समझ नहीं पाता तुम्हें तो अपनी पढ़ाई से ही चिंता है और मुझे घर-व्यवहार से। तुम देखते ही हो कि मैं

अकेले सभी कामों को सँहाले हूँ। तुम एक भी कार्य करने में असफल रहे तब तो बड़े आश्चर्य की बात है।”

उ०—“हाँ पिताजी ! आप की बात बिल्कुल सही है। बात कुछ ऐसी भी है कि किसी न किसी तरह घर की याद आ ही जाती है। घर की ओर से दृष्टि भी किस प्रकार फेर सकता हूँ ? यदि आप कुछ दिनों के लिये बाहर चले जाते हैं तो घर का कार्य मुझे ही देखना पड़ेगा। खैर, आप इस बात की चिंता न करें। मैं जहाँ तक अपने कार्य में अग्रसर हुआ करता हूँ। परिश्रम के अनुकूल फल देने वाला तो ईश्वर ही है।”

ठा०—“अच्छा, तो अब जाओ और अपनी माँ को भी अपना कुछ हाल सुनाओ।”

उ०—“हाँ पिताजी ! माँ भी शायद इस बात के लिए उत्सुक रही होगी। मैं अभी-अभी जाकर उनको सारी आशाओं की पूर्ति किये देता हूँ। अब आप निश्चित होकर अपना कार्य करें।”

इतना कहकर उमेश वहाँ से उठा और माँ के पास गया। ठकुराइन अपने पुत्र को देखकर बहुत खुशी हुई। उनेश ने अपने माँ के चरण को छू कर कुशल-मंगल कह डाला। माँ ने उसे नहाने का वचन देकर आप पुनः रसोई-घर में चली गई। अब उमेश ऊपर की मंजिल में गया और कपड़े उतारने लगा। इतने ही में एक नौकर वहाँ आ पहुँचा और उमेश को कपड़े उतारने में मदद किया। वह नौकर वहाँ से चल पड़ा और स्नान के लिए तैयारी करने लगा। इधर उमेश भी आराम करने के लिये लेट रहा। इतने में ही उसे झपकी आने लगी और वह निद्रा-देवी की गोद में अपने को भूल सा गया।

कुछ देर पश्चात् वह नौकर पुनः आया और उमेश को उठाया। अब उमेश उठकर नहाने के लिए घर के पास ही कुएँ पर गया

उसने जी-भर कर स्नान किया और फिर अपने कमरे में आ गया। अब वह क्या करता ? फिर लेटे-लेटे कुछ सोचने लगा। उसने अपने साथ लता का फोटो भी लाया था। अब उसे लता की बात याद आने लगी। अब भी वह यही सोचता था कि चाहे जो कुछ भी हो लता को ही वह अपने इस घर में लायेगा। यदि माँ-बाप को यह बात पसंद न आई तो वह उनका कोपभाजन बनने के लिए भी तैयार था। उसे यहाँ तक हिम्मत थी कि यदि उसके माँ-बाप घरसे निकाल देना भी चाहें तो वह भी उसे स्वीकार था। पर वह किसी हालत में भी अपनी प्रेमिका से थिल्लुड़ना पसंद न करता था। जिसको उसने एक बार दिल दे दिया, फिर वह उसे वापस लेने को कभी तैयार न था। लता ही उसकी जीवन संगिनी थी और अंत समय तक वही उमेश के योग्य हो सकती है। कुछ नहीं तो उमेश कम-से-कम एक अनाथ बालिका का हाथ पकड़ कर उसकी विधवा माँ को तो उद्धार करेगा। चाहे दूसरा व्यक्ति इसे धर्म समझे या अधर्म, पर प्रेमिका को अपनाना अब उसका कर्तव्य-सा हो गया है। सर्वप्रथम कर्तव्य को निवाहना ही बुद्धिमत्ता है। जीवन का मुख्य उद्देश्य कर्तव्य ही है और कर्तव्य के निपटारे से ही कोई व्यक्ति यथार्थ में मनुष्य कहला सकता है। अब उमेश ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि इस विषय में उसे चाहे कोई लाख समझावे, पर वह अपनी प्रतिज्ञा से कभी टल नहीं सकता। मर्द से प्रतिज्ञा के टलने पर उसका पुरुषार्थ ही कहाँ रह जाता है ? चाहे उसे पैतृक सम्पत्ति मिले अथवा नहीं इसके लिए वह बिल्कुल दावा नहीं करता। हाँ, उसका अधिकार नहीं तक सीमित है जहाँ तक कि उसका कर्तव्य बतला रहा हो। अच्छे रास्ते पर होने पर भी यदि दूसरे व्यक्ति अनुचित ही समझने लगते हैं तो वह इसकी परवाह बिल्कुल नहीं करता। उसका कार्य सोचा हुआ आवश्यक ही पूरा होगा और पूरा होकर के

हो रहेगा । उमेश लेटे-लेटे इन्हीं सब बातों को सोच रहा था । अब नौकर आया उसे भोजन करने को चलने के लिये कहा । वह कमरे से बाहर निकल आया और हाथ पैर धोकर रसोई-घर के अंदर गया । उसी समय ठाकुर महोदय भी दूसरे कमरे में से निकल रसोई-घर में पहुँच गये । दोनों बाप-बेटे खाने को बैठ गये और दोनों में पुनः वार्त्तालाप शुरु हो गई ।

ठाकुर साहब—“उमेश ! परीक्षोपरान्त तो तुम्हें छुट्टी भी मिलेगी न ? उस समय तुम क्या करोगे ? देखते ही हो, अब मैं बूढ़ा हो चला हूँ । अब मुझसे पहले की जितनी शक्ति नहीं रह गई है । मेरे बाद मेरी इज्जत को रखनेवाला एक सिर्फ तुम ही हो । अब तुम जान सकते हो कि तुम्हारे ऊपर मेरा कितना भरोसा है । एक ही कार्य को पढ़ा अनपढ़ा व्यक्ति भिन्न-भिन्न ढंग से करता है । उसके करने में कुछ सोचने की तीव्र बुद्धि चाहिये । इस समस्या को पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही उचित रीति से हल कर सकता है । यही सोच मैंने तुम्हारी पढ़ाई के लिये रुपयों को पानी की तरह बहाया और तुमको किसी प्रकार कष्ट न होने दिया । मैंने अपनी आँखों से कई विद्यार्थियों को बड़ी-बड़ी मुशीबतें झेलते हुये देखा है । उनके कष्ट का निवारण के लिए मैंने भी भरसक प्रयत्न किया । यदि ऐसे विद्यार्थियों में तुम्हारी समता को जाय तो ऐसी घटना तुम में घटती न दिखाई देगी । अब तुम्हारा भी तो मेरे प्रति कुछ कर्तव्य है । पश्चात् पर की सारी व्यवस्थाएँ तुम को ही करनी है । अब तुम भी कुछ सोचो करो कि मेरी वृद्धावस्था में लाठी का एक मात्र सहारा-तुम ही तो हो । देखो न, तुम्हारे दादे की कमाई को मैंने किस ढंग से खर्च किया । इसका यह मतलब नहीं कि मैंने सारी कमाई को बर्बाद कर डाला; बल्कि यह कि मैंने रुपयों की और भी उत्पत्ति की । मेरे स्थान पर यदि कोई दूसरा ही व्यक्ति रहता तो मेरा जहाँ तक खयाल है

है धन लालच में पड़कर वह धन की वृद्धि करने के सिवाय और भी नष्ट कर डालता । मैं सोचता हूँ कि जिस प्रकार मैंने अपने पूर्वजों की इज्जत बचाई उसी प्रकार मेरा पुत्र भी मेरी प्रतिष्ठा को सदा उज्ज्वल बनाने का सफल प्रयास करेगा । हाँ ! अपने पुत्र के प्रति पिता का भी कुछ कर्तव्य होता है और उस कर्तव्य के पालन करने में शायद मैंने आज तक कोई भी त्रुटि न रखा यह तो तुम खुद ही कह सकते हो ।”

उ०—“हाँ पिताजी ! आपने जो भी कहा अनुरागः ठीक कहा और मेरे हित के लिए कहा । मुझे मालूम है कि मुझे भी कुछ ऐसे कार्य करने हैं जिससे कि आपको बुढ़ापे में सुख मिले । आपने मेरी पढ़ाई-लिखाई में जो कुछ भी सहयोग दिया उसके लिए मैं धन्य हूँ । मैं यहाँ तक सोचता हूँ कि जितने सुख का अनुभव मैंने विद्यार्थी-जीवन में किया, शायद और किसी विद्यार्थी को उसका आधा भी न मिला होगा । सभी मुझे धनी व्यक्ति का पुत्र समझ कर मेरी ओर इज्जत की दृष्टि से देखते हैं । यदि आप मेरे लिए इतना न करते तो मैं कहीं का नहीं रह जाता । मुझे इन बातों का पूरा-पूरा ख्याल है और इसीलिए मैं अपने को अक्सर चिंता-सागर में डूबता हुआ पाता हूँ । पुनः घर में आपकी उपस्थिति का ख्याल आते ही अपना ध्यान दूसरी ओर डाल देता हूँ ।

ठा०—“खैर, पहले तो अपनी पढ़ाई समाप्त करो । फिर तो अपना घर है ही । उसके बाद तब कहीं तुम घर के भ्रमेले से परिचित होओगे ।”

उ०—“घर का क्या भ्रमेला है ? पिताजी ! यह बात तो मेरी समझ में कुछ भी नहीं आती । यदि साफ-साफ बतावें तो मैं भी कुछ समझ सकूँ ।”

ठा०—“उमेश ! अपने घर का हाल किसको मालूम नहीं होता !

मालूम पड़ता है कि एक तुम को ही अपने घर का हाल जैसे कुछ पता ही नहीं है। समय आने पर तो खुद समझ ही जाओगे। उस समय तुम्हें बताने की कोई भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

उ०—“पिताजी ! क्या आप घर के झमेले से मुझे सतर्क करना नहीं चाहते हैं ?”

टा०—“न चाहता तो बात छेड़ता ही क्यों। मुझसे भी अधिक बातें तुम अपनी माँ से जान सकते हो। किसी समय उसे पूछ लेना कि तुम्हारी माँ का और मेरा ग्रह क्यों नहीं मिलता।

टकुराइन—“जाइये-जाइये ! आप तो बस कोई भी बुरा कार्य दूसरों के सिर पर मढ़ना जानते हैं। जितने अच्छे कार्य होते हैं सब अपना किया बताते हैं। यदि मैं ही इस घर में कलंक का टीका लगानेवाली हूँ तो और सभी भले हैं न ? संसार में अपने दोष को देखनेवाले बहुत कम होते हैं। दूसरों को दोषी बताना तो आसान है, पर अपने-आप को कौन पूछे। जरा आइने में मुँह देख आते तब न पता चलता। मैं यही बोली थी न कि यदि लड़के की शादी हो जाती तो मुझे अपने कार्यों में कुछ सहायता अवश्य ही मिलती। मैंने तो कोई बुरी बात कही न थी। हाथ जलाकर खाना पकाना आप क्या जानें ? बस परोसी हुई चीज से भर गले से नीचे उतार जाते हैं और तोंद के उपर हाथ फेरते हुए हुक्का गुड़गुड़ाने लग जाते हैं। कभी खाना बनाने के लिए हाथ जलाना पड़ता है तब न बाबू साहब को पता चलता। कितने कष्ट से खाना बनाई जाती है, खानेवाले को क्या मालूम ? इतना करने पर भी रात-दिन माथा-पच्ची करते-करते मेरा तो दिमाग ही खराब हो जाता है। यदि लड़के की शादी जल्द नहीं कर देते हैं तो लड़का बुद्धू है थोड़े ही ? वह आप ही भले घर की लड़की खोज कर विवाह कर ही लेगा। किसी के भरोसे कोई शादी के लिए भी बैठता है ? समय आने पर सब को

अपने-अपने कार्यों की सूझ हो जाती है अब तो साहब बोलेंगे भी नहीं ! जैसे कि मुँह में दही जमा दिया गया हो !

ठा०—“ देखो बेगम उमेश ! तुम्हारी माँ तो रोज यही उधम मचाती रहती है । बात इस ढंग से करती है, जैसे वही कमाकर लावे और और मैं चुपचाप बैठ-बैठा खाऊँ बुद्धहीन स्त्रियों की तो यही बन पड़ती है । एक गरीब व्यक्ति के घर में व्याही होती तब न पता चलता । न आगे सोचना है न पीछे । वस् जो मुँह में आया बकते गये । यदि मैं कुछ दिन घर में ऐसे ही बैठ जाऊँ तो जरा सोचो इसका यह क्रोध कहाँ तक अपना प्रभाव दिखला सकता है ? उस समय तो यही मुझे घर से निकालने के लिये तैनात हो जायगी । ईश्वर ने जैमे इसे स्मरण शक्ति ही नहीं दिया है । यह सब सोचना तो दूर रहा । उल्टे ही अपना अधिकार जतलाने लग जाती है । यही घर का मुख्य भ्रमेला है । अब तो तुमने भी देख लिया न ? ”

उ०—“ माँ ! पिताजी से मुँह लगाकर बोलना तो उचित नहीं । तुम तो उनकी इज्जत का जैसे कुछ खयाल ही नहीं करती । स्त्री को पुरुष से कैसा व्यवहार रखना चाहिये, यह क्या तुम्हें मैं बताऊँ ? दूसरों के घर में तो मैंने आज तक ऐसी दशा न देखी । जिसकी प्रतिष्ठा का खयाल बाहर के लोग करते हैं उसी के घर में यह हाल ? नहीं माँ ! तुम बिल्कुल गलत रास्ते पर हो । आदमी जन्म लेता है तो इसका यह मतलब नहीं कि वह सिर्फ अपना पेट पालने के लिये ही इस धरा पर आया हो । वह कुछ काम करके दिखलाना चाहता है और अपने पुरुषार्थ का परिचय देना चाहता है । मुझे पढ़ने जाने से मतलब ही क्या था ? मैं तो बैठे-बैठे ही अपना पेट भर सकती था । फिर रात दिन दिमाग को परेशान कर डालने का मतलब ही क्या ? यह संसार की रीत नहीं है । ज्ञान-प्राप्ति से ही अच्छे विचार पैदा हो सकते हैं । विद्या के बिना ज्ञान संभव नहीं । तुम तो सब कुछ समझती हो, पर पता नहीं तुम इस तरह की बातें क्यों किया करती हो ? ऐसा कहना तो तुम्हें

नहीं सुहाता ।”

ठकु०—“फिर तो तुम भी उसी बाप के पुत्र न हो । बाप का स्वभाव लड़के में न आवे तो वह लड़का ही कैसा ?”

उ०—“माँ ! यह तो स्वाभाविक ही है । बाप का स्वभाव क्या ? उनका तो चेहरा तक लड़के से मिल-जुल सकता है ।”

ठकु०—“तो क्या मैं गलत रास्ते पर हूँ ? मैंने घर के परिवार की वृद्धि के लिये ही न कहा था ? यह भी यदि स्वीकार नहीं तो खैर मैं चुप रहती हूँ । तुम्हारी भी यही राय है न कि परिवार के बढ़ने से खर्च भी बढ़ाने पड़ते हैं । घर का अनाज शीघ्र समाप्त हो जाने के डर से तुम दोनों बाप-बेटे मिलकर एक मत कर लिये हो न ?”

उ०—“माँ ! ऐसा मत कहो । परिवार बढ़ने से तो और अधिक खुशी होती है । तब तो खर्च के डर से लोग सन्तान कि उत्पत्ति भी न करें । यह भ्रम है । इस भ्रम में पड़ना अच्छा नहीं । मैं नहीं कहता कि तुम गलत रास्ते पर हो । दो-चार आदमियों के साथ रहने पर ही बातचीत चलती है । आदमी तो अकेला बात नहीं करता । मेरी यही प्रार्थना है कि तुम सिर्फ अपने कामों को ही देखो । पिता के कार्य में हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं । भला ऐसा कौन सा पिता होगा जिसे अपने पुत्र की शादी के लिए फिक्र न हो । शादी तो अभी मैं ही नहीं करना चाहता । फिर तो मेरे लिये तुम्हें सिर पटकना या पिताजी को दोष देना सर्वथा गलत है ।”

ठा०—“बेटा उमेश ! चुप रहो । ऐसे मूर्खों के संग तुम क्यों लगते हो जिसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी समझाने से हार मानते हैं । यह तो तुम्हारी और मेरी शक्ति के बाहर की बात है ।”

उ०—पिताजी ! आप का कहना बिल्कुल सही है । घर के इस झमेले से मैं अब बहुत ऊब आया हूँ । ऐसा तमाशा तो कहीं भी देखने को नहीं मिलता । खैर मेरी पढ़ाई समाप्त होते ही मैं स्वयं ही सारी व्यवस्थाएँ ठीक

पांच

अब दोनों बाप-पेटे भोजन करने के पश्चात् अपने-अपने कमरे में गये। उमेश भी बिलौने पर लेट रहा और विचारमग्न हो गया। वह सोचता था कि माँ का मिजाज अपने ठिकाने में नहीं है। एक तरीके से उसका कहना भी उचित ही था। उसकी माँ की बहुत बड़ी गल्ती यह थी कि वह अपने पति से मुँह लगाकर बोला करती थी। उसकी यह आदत बहुत खराब है। मेरी बातों को भी वह कुछ न कुछ अश्रय ही समझ गई होगी। इसलिये मैं सोचा करता हूँ कि पत्नी ऐसी हो जिससे सुख प्राप्त की आशा दिखाई दे। रात-दिन का यह दंटा अच्छा नहीं। भले घर के इस तरह का व्यवहार यदि कोई बाहरी व्यक्ति सुन ले तो उस घर की मर्यादा कहाँ तक स्थायी रह सकती है। घर की सारी व्यवस्थाओं को उचित ढंग से चलाना ही एक कुशल व्यवहारिक व्यक्ति का काम है। सभी लोग कहते तो हैं, पर कर नहीं सकते। इसलिये तो प्रायः देखने में आता है कि आज जिसका घर सुखी और सम्पन्न है कल उसी घर का व्यक्ति सड़क पर भीख माँगते हुए दिखाई देता है। समय परिवर्तनशील है और न जानें कब क्या बात जाय। घर का व्यवहार चलाना कोई मामूली खेलवाड़ नहीं है। स्त्रियों को इस बात की जानकारी कहाँ? वे तो स्वयं दूसरे के भरोसे रहती हैं और अपनी माँग को पेश करते उन्हें लज्जा कहाँ? बहुत कम स्त्रियाँ अपने अधिकारों को समझती हैं। पुरुष बेचारा क्या करे? वह कहाँ तक दूसरे के पीछे दौड़ता फिरे? आखिर उसका भी तो शरीर है, उसकी भी तो इच्छा है। पर स्त्रियों को यह क्या पता? वे तो रात-दिन गर्व और अहंकार में ही डूबी रहती हैं। थोड़ा सा घर का कार्य बतला देती हैं, बस इतने में ही बन बैठती हैं। अरे? घर बैठे-बैठे तुम इतना भी न करो तो और कौन करे? घर के सारे कार्यों को सँभालना ही तो उनका कर्तव्य है। यदि अपने कार्यों

को भी उचित ढंग से न करें तो फिर उनका जीवन भी तो बिहार है। औरतों की इन बेतरीके की बातों को सुनकर मैं भी हैरान हो जाता हूँ। वे समझते हैं कि मर्द उन्हें खुशामद तो करने आयेंगे ही। यदि मर्द विवाह करना बन्द कर दें तो स्त्रियों के मिजाज अपने आप ठिकाने लग जायँ। यह तो जैसे उन्हें पता ही नहीं है कि पुरुषों को किन-किन कठेनाइयों को भेजने के पश्चात् रात में सुब से दो रोटियाँ खाने को मिलती हैं। उन्हें तो हरदम घर की फिक्र लगी रहती है कि कल फिर क्या खाया जाय। यदि खाने के समय भी स्त्री खराखोटा सुनाने लग जाती है तो यह मर्द को सश कहां? इसलिये मर्द को बहुत सी जिम्मेदारियाँ दोनों हैं, पर स्त्रियों के कार्य तो घर के आँगन तक ही सीमित हैं। यदि वह भी कमाने के धुन में लग जाय तो मर्द चैटे-चैटे हलुवा-पुड़ी चाभने लग जायँ और चैन से जिन्दगी व्यतीत करें। ऐसा होते हुए तो कभी दीख नहीं पड़ता। मर्द तो कभी घर में आराम से रह ही नहीं पाता। हाँ यदि उसका मन खिन्न हो जाय तो कुछ धरटे आनंद मनाने सकता है। इन्हीं बातों को सोचते हुए उमेश चिन्ता-सागर में डूबा हुआ था। वह समझ ही नहीं पा रहा था कि उसका क्या कर्तव्य है और अब वह ऐसा कौन कार्य करे जिससे घर में शान्ति बनी रहे। एकाएक उसे फिर लता की याद सताने लगी। वह सोचता था कि यदि लता को यहाँ लाया जाय तो इसमें कोई शक नहीं कि वह अपने मुकामों द्वारा सब को खुश रखे। उसे लता से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं और वह इन आशाओं से कभी विमुख नहीं हो सकता। यदि उसके माँ-बाप उसके विवाह के कार्य में सहायता न दें तो उसके सारे स्वप्न भूटे रह जायँगे और उसे मजबूरन घर छोड़ना ही पड़ेगा। यदि लता का इस घर में प्रवेश हो तो सब के रास्ते में फूल बिछ जायँ। वरना संभव है कि किसी दूसरी औरत के आने से सभी कार्य तहस-नहस हो जायँ। यहाँ तो बात कुछ ऐसी है कि वह किसी दूसरी औरत को ला ही नहीं सकता। फिर यह गड़बड़ मामला क्यों हो? लता ही उसके जीवन का आधार है। यदि वह उमेश की न हुई तो उमेश सभी

कुछ त्याग देने को तैयार है। यह है उसकी प्रतिज्ञा और यही है उसके मविष्य का मुख्य स्वप्न।

उमेरा विचार करे करे प्रायः थक सा जाता। वह सोचो सोचो विचार की शृङ्खलाओं पर चढ़ जाता और ज्यों ही उसे घर का गड़गड़ाया हो आती उसे जैसे लगता था कि वह बहुत ऊँचे से नीचे की ओर गिर गया हो। उस समय वह अपने को असहाय चित्त लेता हुआ पाता था। वह समझ ही नहीं पाता कि वह घर के मामले को किस प्रकार मुचभावे। यदि उसकी इच्छा हुई तो वह घर में अलग भी रह सकता है और अपनी कमाई पर जिम्मेगी बसर कर सकता है। फिर उसे स्मरण हो आया है कि ज्येष्ठ पुत्र का ऐसा कर्ष उचित नहीं होता। घर में माँ-बाप को छोड़कर बाहर ठोकरें खाना भी उचित नहीं जँवता। पिता-माता की सेवा में बढ़कर और कोई धर्म नहीं। इसीलिए तो प्रायः देखा जाता है कि माँ-बाप का कहना न मानने से पुत्र के उपर प्रियतियों का पहाड़ सा दूध पड़ता है। वह इन अड़बटों का कहाँ तक सामना कर सकता है। हो सकता है कि तकलियों को भेटने के पश्चात् ज्ञान-मार्ग दिखलाई दे। इसलिये यह कहना कि 'ऐस लगने से बुद्धि बढ़ती है' कोई गलत नहीं। वास्तव में देखा जाय तो यह उक्ति अन्तराशः सत्य है। जब तक कर्षों का सदन नहीं किया जाता तब तक ज्ञान की वृद्धि संभव नहीं। यदि माँ-बाप ही अपने पुत्र को घर से निकाल बाहर करना चाहते हैं तब तो कोई बात ही नहीं है। लड़के में ऐव रहने में ही ऐसा हो सकता है, बरना नहीं। पर अपने अधिकारों के लिये भी न लड़ा जाय तो काम ही चलना कठिन हो जाता है। इन अधिकारों की पूर्ति भले ही हो अथवा न हो। प्रायः सभी लोग अपने अधिकारों की माँग पेश करते हुए नजर आते हैं फिर मैं ऐसा क्यों न करूँ? यदि इस पर भी लोग मेरी हँसी उड़ाया करें तो मैं इसकी चिंता नहीं करता। मैं अपने पास की चीज को अच्छी तरह देख-भाल करना िड़करभ्या और जगह भटकता फिरोँ? ऐसा तो हो नहीं सकता। छुपैने

अपनी प्रेमिका की परीक्षा अच्छी तरह ली है और वह हर विषय में सफल हुई है। दूसरे लोग भले ही मेरी वस्तु में अवगुण बतायें पर मेरा जहाँ तक ख्याल है मैंने उस वस्तु की परग्व अच्छी तरह किया है। इस पर भी यदि लता में कोई दोष बताता है तो बिना समझे-बुझे लता को दोषी ठहराना सरासर मेरी अज्ञानता है। उसे ठीक रूप देना ही मेरा सचमे बड़ा कर्तव्य है और इस कर्तव्य को समझने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह अपने गुणों की पहचान न करे। इस समय विचार-मग्न उमेश की आँखें अधखुली थीं और ठीक उसी समय उसकी माँ ने कमरे में प्रवेश किया। आदृष्ट पाते ही उमेश जग गया और सामने अपनी माँ को देखा। वह आँखें मलता हुआ जल्दी से सँभल कर बैठ गया।

ठकु०—“बेटा उमेश ! क्या तुम सो गये थे ?”

उ०—“माँ ! सोया रहता तो इतनी जल्दी कैसे जागता ? ऐसे ही लेट रहा था। तुमने तो खाना खा ली न ?”

ठकु०—“हाँ बेटा ! अभी अभी खाकर आ रही हूँ।”

उ०—“तो फिर बताओ, सारा दिन किस प्रकार कटती हो।”

ठकु०—“यूँ ही घर का कुछ न कुछ काम करती ही रहती हूँ। हाथ पर हाथ धर कर बैठना तो स्त्रियों को उचित नहीं। यदि काम न किया जाय तो घर की सभा वस्तुएँ जैसी की तैसी रह जायँ। मैं किसी के यहाँ तो जाती नहीं हूँ कि गप्पें लड़ाकर दिन व्यतीत करूँ। हाँ कभी-कभी पड़ोस की औरतें आ जाती हैं तो उस समय कुछ देर तक आनन्द मना लिया करती हूँ। पुरुष तो हूँ नहीं कि बाहर जाकर रोज नई-नई चीजों को देख आऊँ। स्त्रियों को यह सब नसीब कहाँ ! इसीलिए कोई आ भी जाती हैं तो कुछ समय के लिये मन रम जाता है। नहीं तो इधर की वस्तु उधर रखने में ही तल्लीन रहती हूँ। अभी तो तुम इन सबों से परे हो। स्त्रियाँ काम करना बंद कर दें तब तो मर्द कहीं के न रह जायँ। आज का कार्य कल के लिए भी नहीं छोड़ा जा सकता। इतना करने पर भी औरतों को मर्द के दबाव में रहना

पड़ता है । बड़े आश्चर्य की बात है । यदि औरत कुछ बोलती भी है तो उल्टे उसे ही गालियों की बौछार को बर्दास्त करना पड़ता है । मैं तो समझ ही नहीं पाती कि स्त्रियों के किन कार्यों से मर्द खुश रहते हैं । स्त्रियों को तो कुछ भी बोलने तक का हक नहीं है । इस तरह से कुएँ का मेढ़क बनना मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं । मैं स्वतंत्र होना तथा भण्डे लेकर स्वतंत्रता के लिए नारा लगाना भी तो नहीं चाहती । बस मेरी यही चाह है कि घर के मामलों में कुछ मेरी भी बातें सुनी जायँ । आखिर मैं भी तो एक लड़के की माँ हूँ और यदि कुछ नहीं तो अपने लड़के को समझाना-बुझाना भी मेरा धर्म है । इतना होने पर भी इस घर में मैं कुछ काम को नहीं रही तो न सही । और ही लोग घर चलाया करें और मैं चुपपी साधे बैठी रहूँ । उमेश ! तुमने तो देख ही लिया न कि तुम्हारे बाबू किस तरह की बातें किया करते थे । मेरी बात को तो तुम समझ ही गये होगे । अब तुम्हीं इसका फेसला कर सकते हो । यदि फेसला करना भी तो बिना किसी का पद लिये हुए । मैं जहाँ तक सोचती हूँ मैंने तुम्हारी भलाई सोच कर ही तुम्हारे बाबूजी से लड़ बैठी, पर नतीजा क्या हुआ यह तो तुमसे छिपा नहीं है ।”

उ०—“मैं ! मैं जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरे लिए जैसी तुम हो वैसे ही बाबू जी भी हैं । फिर मैं पद किमका लूँ ? स्त्रियों को तो जन्म से मरण तक दूसरों के आधीन रहने का अधिकार मिला है । एक स्त्री को बाल्यावस्था में पिता-माता के आधीन, तरुणावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रहना पड़ता है । इस प्रकार उसे किसी भी समय छुटकारा नहीं मिल सकता । वह तो हमेशा ही दूसरे के दबाव में रहती दिखाई देती है, फिर तो वह कभी भी जंजीर से मुक्त नहीं हो पाती । यों तो व्यवहारिक कार्य किसी का रुकता नहीं है । वह तो चलता ही रहता है । यदि एक कुशल व्यवहारिक व्यक्ति उस कार्य की बागडोर अपने हाथ में ले तो उसके जरिये किया गया कार्य का परिणाम बहुत अच्छा निकलता

है। पिता भी कितने कष्टों को सहकर हमलोगों की परवरिश करते हैं। यदि वे कुछ कह भी जायें तो हमलोगों को उचित तथा अनुचित का ख्याल बिल्कुल नहीं करना चाहिये। हमलोगों को बड़ी कार्य करना है जिससे वे सन्न रहें। माँ ! दूध देने वाली गाय को तो लात भी सहनी पड़ती है। फिर तो वे हमारे पूज्य ही ठहरे। व्यावहारिक बातें ही कुछ ऐसी होती हैं कि दोनों ओर से बहस चल ही पड़ती है। इसमें शोक मनाने की तथा दुःख करने की तो बात ही नहीं रह जाती।”

ठकु०—“मैं भी तो यही चाहती हूँ कि ये सदा फूले-फले रहें। उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट न हो और न उनके चित्त में ग्लानि ही पैदा हो।”

उ०—“जब तुम उनके आराम का इतना ख्याल करती हो तो उनके विरुद्ध कुछ कहना भी तो तुम्हारा धर्म नहीं है। कुछ कड़े रख से बोलने का मतलब होता है कि उनसे मुँह लगना। यदि उन्हें ऐसा करना पसन्द नहीं तो तुम्हें इस अपने कार्य से मतलब है। हाँ, ऐसा नहीं कि तुम बिल्कुल चुपची साध लो। अपने कार्य में जिस बात की भी त्रुटि हो पिताजी वो तुरन्त मतला दो और वे जो कहें वही मानो भी। इसी में तुम्हारा कल्याण है और अन्त समय तक तुम सुखी रह सकती हो।”

ठकु०—“यह तुम कैसे बातें करने हो कि मैं अन्त समय तक सुखी रह सकूँ ? जब मेरी बात का कुछ भी भूल्य नहीं तो मेरी क्या हस्ती ?”

उ०—“माँ ! ऐसा न कहो। इस तरह की बातें सुनकर मेरा दिल भी फट जाता है। ऐसा न हो कि मुझे पढ़ाई-लिखाई छोड़कर अभी से ही घर का ध्य हर चलाना पड़े। मुझे तो और भी अगले दर्जे तक पढ़ने की इच्छा है। यदि ईश्वर ने मेरी मनोकामना को पूर्ण किया और तुम भी मेरी बराबर सहायता करती रही तो मैं अपनी इच्छा की पूर्ण सतुष्टि अवश्य ही कर लूँगा। अभी समय तो पढ़ने-लिखने का ही है। यदि समय में ही कुछ कर न पाया तो पीछे पछताने से लाभ ही क्या ? उसके बाद तो घर का भार सँभालना मुझे ही है। तुम माँ-बाप के प्रति मेरा भी कर्तव्य है और

अपने कर्तव्य के पालन करने में मैं सदा सतर्क रहूँगा। इतना करने पर भी यदि मुझमें कुछ त्रुटि हो भी गई तो क्षमा करना तुम्हारा ही काम है।”

ठकु०—“बेटा उमेश ! बात कुछ हद तक ठीक ही है। अपने एक विद्वान पुत्र को पाकर मैं आनन्दातिरेक हो उठती हूँ। तुम्हें पढ़ाई-लिखाई में बाधा न हो पायेगी। इस विषय में पिताजी से भी एक बार सलाह कर लेना। मैं इससे अधिक और क्या चाहूँ ? जहाँ तक मुझमें बन सकेगा मैं हर समय तुम्हारी सेवा के लिए उद्यत रहूँगी। तुम इसके लिए चिंतित मत होओ।”

उ०—“माँ ! तुम फिर वही बात करती हो। यदि पिताजी मुझे खर्च देना बन्द कर दें तो तुम कहाँ से लाकर मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति करोगी ? तुम तो बड़े अचम्भे की बातें करती हो। मैं यदि यह कहूँ कि तुम मायके से मदद लेकर मुझे कार्य से वंचित न करोगी तो यह भी संभव नहीं ! तुम्हारे पिताजी भी तो खुद गरीब हैं। वे भी तो तुम्हें कुछ देने में असमर्थ हैं। आखिर जिधर भी देखो आशा तो पिताजी की ही करनी पड़ती है। यदि उनके कथनानुसार न किया जाय तो किसी का भी कार्य नहीं चल सकता। वे जो कुछ भी कहेंगे सबों की भलाई सोच कर ही कहेंगे। हमलोगों को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये कि कुछ का कुछ हो जाय। अब हमलोगों का कर्तव्य यही है कि उनसे राय ली जाय और उसी के अनुकूल काम भी किया जाय।”

ठकु०—“यह तो ठीक ही है। इसके अतिरिक्त घर में मेरा भी तो कुछ अधिकार है। यदि मैं चुप रह जाती हूँ तो काम चलना मुश्किल हो जाता है। सिर्फ ठाकुर साहब के कहने से ही तो नहीं होता। मैं अपने विचारों को तो प्रकट करती हूँ, पर सुननेवाला कोई है नहीं। मेरे भविष्य का एकमात्र सहारा तुम्हीं हो। तुम्हें अपनी जिम्मेदारी समझ कर कर्तव्य का पालन करना होगा। इस प्रकार मेरी बातों की ओर भले ही कोई कान न दे, पर तुम्हारा यह धर्म नहीं।”

उ०—“माँ ! तुम्हारे लिये मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ । मैंने कब तुम्हारा कहना न माना ? यह तो बताओ कि मैं ऐसा कौन सा कार्य करूँ जिससे तम प्रसन्न होओगी । मैं तो हर समय तुम्हें खुश देखना चाहता हूँ । जब तुमने अगणित कष्टों का सहन कर मेरा भरण-पोषण किया तो उसके बदले मैं मेरा धर्म यह नहीं कहता कि मैं तुम्हें भूल जाऊँ । अच्छा, तो अब यह बताओ कि तुम किस प्रकार संतुष्ट रह सकती हो ? चूँकि मैं इसे जानने के लिए अत्यन्त व्यग्र हो उठा हूँ, अतः मुझे शीघ्र बताओ । मुझपे जहाँ तक बन सकेगा मैं किसी भी कार्य में त्रुटि रखने की हिम्मत न करूँगा ।”

ठकु०—“बेटा ! तुम तो देखते ही हो कि मैं अकेली सारे घर का कार्य करती हूँ । मेरे कार्यों में हाथ बढ़ानेवाली और दूसरी कोई औरत नहीं है । जरा तुम्हीं सोचो कि बिना किसी को मित्र बनाये तुम किस प्रकार रह सकते हो अतः पुरुष और स्त्री तो सामाजिक प्राणी हैं । एक के बिना दूसरे का काम चलना मुश्किल हो जाता है । इधर मैं भी अपने को अकेली पाकर कई दिनों से बेचैन रहती हूँ । इस वजह से मेरे कार्यों में हाथ बढ़ानेवाली एक औरत का होना अति आवश्यक है ।”

उ०—“तो फिर कहो, किसी औरत को नौकरी में लगा दूँ । यदि बात इस तरह की है तो शीघ्र इस कमी को क्यों नहीं पूरा कर लेती ?”

ठकु०—“इस घर में तो नौकरी के लिये बहुत सी औरतें आ सकती हैं । यदि कोई आ भी जाती है तो उससे मनम ना काम करवाना भी जरा बुरा लगता है । वह घर की सारी बातों को जान जाती है और किसी दूसरी स्त्री को भेद बताये बिना उसे कल नहीं पड़ता । इस प्रकार अपने घर की बातें दूसरों को बतलाना जरा उचित नहीं देखती ।”

उ०—“किसी औरत को नौकरानों भी न बनायेगो तो फिर किसी को रखने के लिये जरूरत ही क्या ? यदि घर का व्यवहार अच्छा है तो डर किस बात का ?”

ठकु०—“अरे ! घर का व्यवहार अच्छा कैसे है ? रात-दिन का

दंग कहीं अच्छा होता है ? इस घर से तो हरिजन का घर कहीं अच्छा । यहाँ तो पास में पैसे रहते हुए भी रात-दिन चिंता सताती रहती है । ऐसा तो मैं स्वप्न में भी नहीं सोचती थी कि कहाँ का यह बला आ पड़ा । अच्छा होता कि मैं दूसरे के घर ही ब्याही होती । मेरे माँ-बाप भी पटमूर्ख हैं जो बिना समझे-बुझे मेरे गले में फाँसी लगा देने में भी बाज न आये । मैं मन मसोसकर रह जाती हूँ, पर स्त्री जाति होने के नाते कर भी तो कुछ नहीं पाती ।”

उ०—“माँ ! तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं । यों तो भले-बुरे सभी हुश्रा करने हैं, पर ग़ीती बात का स्मरण करना संताप बढ़ाना है । तुम जैसी माँ का यह कथन ठीक नहीं जँचता । माँ-बाप अपनी पुत्री को बहुत सोच-समझ कर विवाह कर देते हैं । मान लो यदि उन्होंने एक छोटी भूल की भी हो तो उस पर तुम्हें जरा भी ध्यान न देना चाहिये । जो भी हो आखिर तो वे तुम्हारे पूज्य ही हैं । उनके चरित्र में लांछन लगाना उचित नहीं । यह तो सिर्फ समझ का फेर है । यदि मेरा दिल प्रसन्न है तो उस समय बुरी वस्तु भी अच्छी दिखाई देती है । इसके विपरीत जब मेरा मन खिल हो जाता है तो उस समय मैं जो भी चीज देखूँ वह मेरी आँखों को खटकने वाली सिद्ध होती है । इस समय तुम शोकानल में जल रही हो । यदि तुमने अपने तन का कुछ भी खयाल न की तो तुम्हारे लिए कभी अच्छा नहीं हो सकता ।”

ठकु०—“हाँ बेटा ! यह तो मैं सहो माननी हूँ । ज्यादा से ज्यादा यही कर सकती हूँ कि घर में भगड़ा पैदा हो जाय । इससे तो दूसरों का कुछ बिगड़ने जाता नहीं । पर-वश नारी की बातों को सुनता ही कौन है, बेटा ?”

उ०—“माँ ! सभी सुनते हैं और भविष्य में सभी सुनेंगे । मैं तो यहाँ तक सुनता हूँ कि मर्द स्त्री का गुलाम है । उसकी बात को मर्द किसी भी हालत में दाल नहीं सकता । यही कारण है कि मर्द-स्त्री के पीछे पड़कर अपना सर्वस्व तक लूटा देने को तैयार हो जाते हैं । मैं भी नहीं कह सकता

कि यह बात कहाँ तक सही है। मैंने तो इस बात को दूसरे के मुँह से कहते हुए सुना है। अब तुम्हीं बताओ कि यदि बात इस तरह की है तो तुम इस फेर में क्यों पड़ी हो ?

ठकु०—“बेटा ! लोग तो ऐसे ही कहते हैं। यह भी मैं मानती हूँ कि संसार के अधिकांश लोग स्त्री के पीछे पड़ते हैं। यदि ऐसा न होता तो एक ही माँ के उदर से जन्मे हुए दो भाई अपनी-अपनी स्त्री की बातों को सुनकर आपस में क्यों लड़ा करते ? तुम अपने पड़ोस के ही श्रीधर मिश्र के घर की हालत को देखते ही हो। स्त्री की बात को न सुननेवाले ही कम लोग होते हैं, यह तो अन्तराशः ठीक है। संसार की यह लीला होते हुए भी इस घर का तो अजीब हाल है। तुम स्वयं देखते ही हो कि मैं चाहती हूँ एक बात पर हो जाती है दूसरी ही। मर्द और स्त्री के प्राण एक होना चाहिये। यहाँ तो मैं इसका ठीक उल्टा हो देखती हूँ। इन्हीं सब बातों को सोचते-सोचते मैं कुछ कर भी नहीं पाती। सिर्फ बोलने या बकने से भी तो कुछ नहीं हो पाता।”

उ०—“हाँ, माँ ! मनुष्य परिस्थिति का गुलाम है। उसी के अनुकूल वातावरण में अपने को रँगना होता है। बिना सोचे-समझे जरा भी इधर-उधर मचला कि बड़े संकटों का सामना करना ही पड़ता है। खैर तब मुझे कुछ देर विश्राम करने दो। कल तो फिर अपने कार्य में जाना ही है।”

ठकु०—“तुम अवश्य कुछ देर आराम कर लो। इतनी दूर से आये हो तो जरा लेट भी लो। जिस बात को कहने के लिये मैं यहाँ तक आई थी उसे कहना ही भूल गई।”

उ०—“तो फिर कहने में देर क्यों करती हो ? न जाने तुम कहाँ-कहाँ की बातें कर चुकी पर अपने मन की इच्छा भी पूर्ण नहीं कर पाई। खैर कहो भी तो ?”

“बेटा ! मैं इससे अधिक और क्या कहूँ। यदि अब तुम्हारा विवाह हो जाता तो मैं सुख से जीवन व्यतीत करती। मैं तुम्हें अपना कार्य करनेसे

तो रोकती नहीं हूँ। सिर्फ शादी कर लो और बहू को मेरी जिम्मेदारी में छोड़ दो। पढ़-लिख लेने के पश्चात् विवाह के लिये तुम्हें दुबारा परेशानी न उठानी पड़ेगी। उस समय तक तुम्हारी बहू सुख में खा-पीकर चैन में अपना दिन काटेगी। यदि मैं अस्वस्थ भी रही तो वह खाना बनाकर अपने मसूर को तो दे सकती है। तुम जानते ही हो कि मेरी तबीयत न लगाने पर पाचू की माँ यहाँ आकर खाना बना देती है। यदि घर में बहू रही तो किसी को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मैं अपने सुख के लिए तुम्हें ऐसा करने को नहीं कह रही हूँ। यदि मेरी यह इच्छा पूरी हो जाय तो घर के सभी लोगों के लिये अच्छा है। मैं जहाँ तक सोचती हूँ, तुम अवश्य इस बात में सहमत होगे।

उ०—“माँ! तुम्हारा कहना कोई गलत नहीं है। मैं तो अभी विद्यापार्जन में लगा हूँ। ऐसा करने से मेरे कामों में कठिनाई उपस्थित हो जाती है और मैं उन्हें अच्छे ढंग से नहीं कर पाता। बहुत से विश्वार्थियों का मैंने ऐसा करते हुए देखा है। या तो वे परीक्षा में फेल हो जाते हैं या उन्हें अपनी पढ़ाई हाथ से धोना पड़ता है। दो में से एक घटना तो निश्चय ही घटती है। इसमें कोई सन्देह नहीं।”

ठकु०—“उमेश! तुम तो मामूली ढंग में पढ़ते नहीं हो जो तुम्हें इन बातों का ज्ञान न हो। बात यह भी है कि विश्वार्थियों को कोई दूसरी बात नहीं सोचना चाहिये। उन्हें पढ़ते समय अपना ध्यान कितान्न में से भी हटाना उचित नहीं। कर्तव्य-परायण पुरुष वही कहला सकता है जो अपने में विश्वास रखकर कार्य करने में व्यस्त रहता है। कर्तव्य से च्युत व्यक्ति कार्य में कुशल नहीं कहला सकता। तुम अपने कर्तव्यों से पीछे मत हटो। जो चुराने से इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। इसलिये मेरा यही कथन है कि विवाह कर लेने से तुम्हें कुछ भी हानि न होगी। भला तुम्हारे नुक-
शान का ख्याल मैं कभी स्वप्न में भी कर सकती हूँ?”

उ०—“तुम अपने पुत्र के लिये यह कैसे कर सकोगी? यदि ऐसा होने

लगे तो संसार के सभी कार्य बन्द हो जायें। यदि माँ अपने पुत्रों का ख्याल ही करना छोड़ दे तो गजब हाँ जाय। तुम्हारे प्रति मैं दुःखी हूँ। मेरा विवाह हो जाने पर तो सब को कुछ न कुछ आराम मिलता सहज की बात है। यह तभी संभव है जब कि मेरी पत्नी का आचार-विचार अच्छा हो। यदि मैं हर समय घर पर रहता तो इस कार्य के लिये तुरन्त सलाह दे देता। तुम स्वयं देखती हो कि मैं भी कार्यों के बन्धन में जकड़ा हुआ हूँ। मेरे कहने से तो कुछ हो नहीं पाता। जब तक माँ-बाप जीवित हैं घर में मेरा हुक्म नहीं चल सकता।”

ठकु० —“तो तुम श्री-जालि न हो कि इसकी सारी जिम्मेदारी माँ और बाप पर पड़े। लड़के को तो इस बात की चर्चा खुद चतानी चाहिये। यदि उसे किसी बात में सन्देह मालूम हो तो उसे भी भियाना चाहिये। इसके विपरीत यदि मेरी पुत्री रहती तो उसने इस बात की आशा नहीं की जाती कि वह अपने विचारों को प्रकट करे।”

उ० —“माँ-बाप के रहते लड़के को शादी के बारे में कुछ कहने के लिये संकोच मालूम पड़ता है। हाँ, यदि माँ-बाप कोई न रहें तो उनका पुत्र विवाह का प्रबन्ध मनमाने तौर से आप कर सकता है। यहाँ तो ऐसी बात नहीं दिखाई देती। मेरे जन्म-मृत्यु के रहते हुए कुछ भी कहने का साहस नहीं होता। मैं अब करूँ क्या? जब तुम इतना हठ करती हो तो तुम पिता से ही इस बात की चर्चा कर लो। उसके बाद वे जो कुछ भी बतावें तुम मुझे कहना। तब कहीं मैं भी अपना विचार प्रकट करूँगा।”

ठकु० —“मैं चाहती हूँ कि यदि तुम मेरी बातों को मान जाओ तो तुम्हारे बाबूजी को हम दोनों के कथनानुसार करना ही पड़ेगा। इसलिये मैं चाहती हूँ कि तुम मेरे विचार में सहमत हो जाओ तो हम दोनों के रास्ते साफ हो जायें। अब तो सिर्फ तुम्हारे विचार की ही देर है। यदि तुम मेरा कहना मानते हो तो सबों के लिये अच्छा है।”

उ० —“माँ! पिता के रहते हम लोग कर ही क्या सकते हैं? वे ही

तो घर के मालिक हैं। यदि पहले उनसे सलाह न ली जाय तो उनके दिल में बहुत बड़ी चोट पहुँचेगी। वे कहेंगे कि उनके रहते घर वाले मनमानी करते हैं। न्याय तो नहीं बतलाता कि घर के बड़े बूढ़े से परामर्श न लिया जाय। जिस घर में ऐसा होता है उस घर के लोग बेवकूफ कहाते हैं और अन्त में उन्हें बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ता है। मेरा अनुरोध यही है कि तुम एक बार पिताजी से अवश्य इस बात की चर्चा छेड़ दो। वे तो कुछ न कुछ जवाब देकर ही रहेंगे।”

ठकु०—“मैं कह रही हूँ कि जब मेरी इस घर कुछ हस्ती नहीं तो फिर मैं किसकी खुशामद करती फिरूँ ? शादी करोगे तुम, खर्च करोगे तुम्हारे पिताजी और मुझको क्या ? बहू से तो मुझे कुछ आराम मिल सकता है और उसे कायों को करते देव मुझे कुछ तसल्ली अवश्य हो सकती है। इससे अधिक तो और कुछ हो नहीं सकता। यदि बहू को तुम लाने की इच्छा नहीं करते हो तो जिस प्रकार घर के सारे कार्य मैं करती आई हूँ आगे भी उसी तरह करूँगी ही। हाँ, मुझे सिर्फ इतना ही डर है कि कहीं व्यक्ति मुझे यह दोष देने न पायें कि मैंने तुम्हारी शादी के लिये कोई खबर ही न ली। कम से कम इतना से भी यदि मैं बच जाती हूँ तो मैं अपने को एक भती औरत समझूँगी।

उ०—“माँ ! मैं तुम्हें कितनी बार बतलूँ। मेरी बातों को तुम जरा भी अपने ध्यान में नहीं लाती हो। मैं बार-बार कहता हूँ कि घर के चाहे छोटे कार्य हों या बड़े हर काम में घर के मुख्य व्यक्ति से सलाह लेनी चाहिये। सब कोई अपने मनमाने ढंग करे तो यदि कार्य ठीक से नहीं चल सकता। घर का संरक्षक राजा की तरह है। उसके कानून का पालन करना हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है। इसलिये मैं तुमसे प्रार्थना कर के कहता हूँ कि बिना पिताजी की सलाह के मनमाने ढंग से किया हुआ हमलोगों का कोई भी कार्य अच्छा नहीं होता।”

ठकु०—“अच्छा तो अब तुम जैसा कहो। यदि तुम्हारी यही राय है।

तो मुझे भी मंजूर है। मैं भी अब तुम्हारे कहने के अनुसार ही चलूँगी। जब तुम्हें यही पसन्द है तो मैं फिर तुम्हें अपसन्न होते क्यों देखूँ ?”

उ०—“मुझे भी सोचने दो कि मैं अपने भविष्य का रास्ता किस प्रकार निष्कण्टक बनाऊँ ? किस ढंग से चलने पर मैं अपनी जिन्दगी का पूरा-पूरा लाभ उठा सकता हूँ। तुम पिताजी से अश्वय समझ लेना। सिर्फ मेरे ही भरोसे काम नहीं चल सकता।”

ठकु०—“हाँ ! तो मैं भी सोचती हूँ कि तुम कुछ अश्वय सोच-विचार कर लो। जिस निर्णय पर तुम पहुँचो वह मुझे अश्वय बता दो। तब तक तुम कुछ देर आराम कर लो। तुम्हारे बाबूजी कुछ आवश्यक कामों से बाहर गये हुए हैं। वे अब तो आते ही होंगे। यहाँ पहुँचते ही मैं सारी बातों को फिर उनके सामने पेश करूँगी।”

उ०—“माँ ! मेरी भी यही राय है। तुम जाओ और अपना काम देखो। बाबूजी अब शायद आ ही रहे होंगे।”

इतना कहने के पश्चात् उमेश बिल्लौने पर लेट गया और उसकी माँ बाहर चली गई। उमेश अपने दिल में सोच रहा था कि क्या वह तमाशा तो नहीं देख रहा है ? वह अपने पिता के मिजाज से पूर्ण परिचित था। अब वह बाप, माँ, लता और अपने स्वभाव की जाँच-पड़ताल करने लगा। वह सोच रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि उसके अरमान मिट्टी में मिल जायँ। यदि उससे सलाह ली जाती है तो वह अपने हक का दावेदार होकर खड़ा क्यों नहीं रहे ? यदि बात ऐसी है तो उसकी इच्छा की पूर्ति होना भी तो आवश्यक है ? अगर उसकी इच्छाएँ मन में ही रह जाती हैं तो उसे अपने ऐसे घर से मतलब ही क्या ? जब उसने सिर्फ एक कार्य को करने के लिये अपने कदमों को आगे बढ़ाया है तो वह फिर कैसे पीछे हट सकता है ? पुरुषार्थ पीछे हटने में नहीं, कर्तव्य को पालन करते हुए आगे बढ़ने में है। इस प्रकार उमेश बिल्लौने पर पड़ा हुआ विचार में तल्लीन था।

छः

ठकुराइन अपने घरेलू कार्य में लग गई। उसी समय पड़ोस की एक स्त्री गोठी में एक बच्चे को ली हुई ठाकुर साहब के घर पर पहुँची। वह ठकुराइन से भेट करने के उद्देश्य से आई थी। ठकुराइन ने उसे बैठने को कहा और आप भी चटाई पर बैठ गई। वह औरत एक भले घर की स्त्री थी। कभी-कभी वह ठाकुर साहब के यहाँ आ जाया करती थी। उसका यथार्थ नाम तो विदित नहीं, पर लोग उसे पाचू की माँ के नाम से पुकारते थे। वह आज बहुत दिनों के पश्चात् ठाकुर के घर गई थी। जब वह बहुत दिनों पर आती तो ठकुराइन उससे विलंब होने का कारण पूछती। घर के कार्यों से अवकाश न मिलने का कारण वह बता देती थी। इस प्रकार कभी-कभी समय निकालकर वह ठकुराइन के घर पर पहुँच ही जाती और यदि उस समय ठकुराइन कुछ कार्य करने में लगी हुई रहती तो वह उसे मदद भी कर दिया करती। ठकुराइन मन में सोचा करती कि यदि उसके घर में बहू आ जाती तो उसे पाचू की माँ की तरह अवश्य सहायता करती। यहाँ तक कि बहू तो और भी कई कार्यों को सँभाले बैठती। इस प्रकार ठकुराइन को इस बात की बड़ी लालसा थी कि यदि घर में बहू आवे तो उसका भाग्य ही खुल जाय। उस समय वह अपने को बड़ी भाग्यवती समझती और ईश्वर को सैकड़ों धन्यवाद देती। पर न जानें वह अपनी इच्छा की पूर्ति करने में क्यों असमर्थ है। पतोहू की याद करते उसका हृदय गदगद हो जाता, जैसे कि वह साक्षात् ही उससे बातें कर रही हो। पाचू की माँ जब ठकुराइन को किसी काम में मदद करने लग जाती तो ठकुराइन उसे ऐसा नहीं करने को मना करती। पर पाचू की माँ से रहा नहीं जाता था और वह हठ करके भी उस कार्य में संलग्न रहकर ही साँस लेती थी। बेचारी ठकुराइन भी क्या करती। कार्य के समाप्त होते ही दोनों

गप्पें लड़ाने के लिए आमने-सामने बैठ गयीं। इसके पहले भी पाचू की माँ के वहाँ पहुँचने पर ठकुराइन बहुत प्रसन्न होती और दो-चार घण्टे जी भर कर बातें कर लिया करती थी। आज भी पाचू की माँ आ ही गई थी और अब ठकुराइन का क्या कहना था। वह फूली न समायी और अपने घर के सभी कामों को छोड़कर कुछ समय तक आनन्द मनाने के लिये जमकर बैठ ही तो गई।

मर्द लोग प्रायः कहा करते हैं कि उनके घर की स्त्रियाँ चुप्पी साधे बैठी रहती हैं। असल में बात तो यह है कि यदि उनको स्वतन्त्रता दी जाय तो वे मर्द से बातचीत करने में किसी प्रकार भी कम साक्षित न हों। मुख्य बात तो यह है कि वे घरेलू जंजीर की बेड़ियों में बँधी रहती हैं और इसलिये अधिकारों की माँग पेश करने नहीं पातीं। यदि उन्हें बन्धन से मुक्त कर दी जाय तो उस समय उनकी दशा को देखिये। मर्द उनके सामने क्या बोल सकेंगे? वे एक ही साँस में इतनी बातें बक जाती हैं कि उन्हें आगे-पीछे का कुछ भी ख्याल नहीं रहता। यदि उन्हें कहीं मेले में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो फिर उनकी खुशी का क्या ठिकाना? कुछ औरतों के साथ ही वे मेले में जाना पसन्द करेंगी, ताकि उन्हें बातचीत करने का अच्छा मौका मिले। उनकी बातें भी बड़ी अजीब होती हैं। वे तो सर्वप्रथम अपने घर के बारे में, पति के बारे में तथा बच्चों के बारे में खूब दिल खोलकर बातें करेंगी। तब कहीं वे दूसरी बातों की ओर दौड़ेंगी। यही हाल ठकुराइन और पाचू की माँ का था। दोनों ने अपने-अपने घर की बातें जी-भर कर कीं। बातचीत के सिलसिले में पाचू की माँ को मालूम हो गया कि उमेश आज आया है और अभी शायद नींद में है। उमेश के विवाह की बात कहने के लिए ठकुराइन अत्यन्त उतावली हुई और पाचू की माँ से कहे बिना उसे नहीं रहा गया। अब दोनों में निम्नलिखित बातें होने लगीं।

ठकुराइन — “पाचू की माँ! तुम्हें तो मालूम ही होगा कि अब उमेश की शादी होनेवाली है।”

पाचू की माँ — “ यह तो अभी तुम्हारे कहने से मैं सुन पाई हूँ । मेरा सौभाग्य था कि आज शुभ दिन में मैं यहाँ आकर अपने कानों को पवित्र कर रही हूँ । बैठी रहती तो मैं कहाँ से सुन पाती ? आज तुम्हारे घर आने पर मैं अपने को धन्य समझती हूँ । क्यों कि एक तो बड़े घर में पैर रखी हूँ और दूसरे उस घर के लड़के की शादी की चर्चा भी सुन रही हूँ । ”

ठकुराइन — “ तुम भी खूब बनाकर बातें करती हो । मैं समझ ही नहीं पाती कि इस कला को तुमने कहाँ से अपना लिया । बात तो खुशी की अवश्य है । अभी तारीख का निश्चय तो हो नहीं पाया है । अभी तुम किसी से कहना नहीं । यदि कहोगी तो पड़ोस की औरतें एक-एक करके मेरे पास आयेंगी और विवाह देखने के लिए उत्सुक हो उठेंगी । ”

पाचू की माँ — “ ऐसा नहीं । वे तो दावत के लिए घर से ही खुशियाँ मनाती हुई आयेंगी ।

इतना कह चुकने पर दोनों हँसने लगीं और दोनों के मुख पर आनन्द की रेखाएँ अंकित होते दिखाई दीं । भला इस तरह की बातें सुनकर भी कोई खुशी न मनाता हो । उस पर भी ठकुराइन तो उमेश की माँ ही ठहरी न । अब दोनों औरतें ईश्वर को मनाने लगीं कि कब वह शुभ दिन आये जब कि उन्हें उमेश को दूल्हा बनते हुए दिखाई पड़े । अपने इस अरमान की पूर्ति होने के पश्चात् ठकुराइन ने श्रीसत्य नारायण की पूजा लगाने का भी वचन दिया । वह उस समय अत्यन्त खुशी मनायेगी जबकि वह अपनी नव-पतोहू के साथ मंडप में बैठकर श्री सत्य नारायण की पूजा करने में संलग्न रहेगी । यह दृश्य उसकी आँखों के सामने अभी से ही नाचने लगा । इस बात को सुन कर पाचू की माँ के हर्ष का भी ठिकाना न रहा । उसे पूर्ण विश्वास था कि जब कभी भी ठकुराइन के घर में कोई समारोह होगा तो सर्वप्रथम उसे ही बुलावा भेजा जायगा । बिना उसे बुलाये ठकुराइन का शायद खाया भी नहीं पचता । इस बात को ध्यान में लाते ही पाचू की माँ आनन्दातिरेक हो उठी और वह ठकुराइन को धन्यवाद

देने लगी। उसकी बचाई को सुनकर ठकुराइन भी प्रसन्न हो गई और दोनों स्त्रियाँ पुनः बातचीत में तल्लीन होते दोबारा पड़ीं।

पाचू की माँ—“तों तुमने आज बड़ी खुशी को बत मुनाई। अब कप से कम यह तो बनावो कि लड़का कहाँ की है और पाणि प्रदण किस महीने में होने जा रहा है? मैं भी उस समय काड़े बुलाकर रखूँ ताकि शुभ अमसर में पड़न सकूँ। तुम जानती ही हो कि न ताँ परे उस प्रवेक काड़े ही है और न पास में पैसे ही हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मेरे घर से दरिद्रता कभी भी हटना नहीं चाहती। इस लड़के के बाप जो भी कमकर लाते हैं सभी पेट में ही चले जाते हैं। थोड़ी सो तनखाह ने सब कुछ करना पड़ता है। यह समय गरीबों का नहीं है। उन्हें तो अपने पेट के खयाल से फुरसत ही कहाँ? फिर वे कहाँ से पैसे पावें और मन की इच्छा को पूर्ण करें।”

ठकु०—“ऐसा मत कहो। मेरे रहते तुम्हें यह दुःख? विवाह के कुछ दिन पूर्व तुम्हें नई साड़ी दूँगी और पाचू के लिए भी पोशाक बना दूँगी। इसके लिये तुम मुझ पर पूरा भरोसा रखा।”

पाचू की माँ—“मैंने तुमसे कभी कोई चीज माँगा है जा आग माँगूँ? कहते-कहते मुझे तो घर की याद आ गई, न जाने कैसे घर का दशा भी कहती गई। तुम्हें तो सब मालूम ही था। मुझे कहने की कोई आवश्यकता न थी। फिर इस पापो जीभ का भले बुरे का क्या ज्ञान? उसका कम तो सिर्फ बड़बड़ाना है, सोचने की शक्ति तो दिमाग रखता है न? मैं भी क्या-क्या बक गई। खैर ठकुराइन! इसके लिये मुझे तो अपने फटे-पुराने चिथड़े में ही गुजर है। मैं आज तुमसे कुछ माँग कर कितने दिनों तक अपना काम चला सकती हूँ? मैंने तो तुमसे कुछ माँगी भी नहीं है, फिर तुम कैसे कह रही हो कि मुझे कुछ दोगी?”

ठकु०—“मैंने भी तुमसे कब कहा कि तुम मुझसे कुछ माँग रही हो? तुम्हारी दशा देखकर मैं अत्यन्त लज्जित हो जाती हूँ। भर्त्ता और मसीब का तो संसार है ही। मैंने तो यह स्नेहकर कहा था कि यदि ऐसे अवसर

पर भी मैं तुम्हें कुछ दे न पाई तो मैं उमेश की माँ कहलाने योग्य नहीं। इसका विचार तो मुझे है, तुम्हें नहीं न।”

पाचू की माँ — “मेरे लिये तुम अधिक परेशान न हो। मैं तो बराबर तुम्हारे घर पर आया-जाया करती हूँ। तुम सिर्फ अपने कार्य का फिक्र करो। मेरा खयाल करनेवाले तो अभी फले-फूले हो हैं। तुम मेरे लिये मुक्त में परेशान मत होना। मैं इतना ही चाहती हूँ कि मैं जब तुम्हारे घर आऊँ तुमने दो-चार बातें अवश्य कर लिया करूँ। इससे अधिक तुम मेरे लिए और कुछ न सोचना।”

ठकु० — “बात तो तुम्हारी ठीक ही है। मैं तो तुम्हें दूसरीकाई औरत समझकर ऐसा नहीं कह रही थी। तुम्हें धन्य है जो निर्धन होते हुए भी अपने विचारों को उच्च बनाये रखती हो।”

पाचू की माँ — “खैर, मुझे अब इससे अधिक न लजाओ। अब तो देर भी हो गई है। मुझे जाने भी दो। फिर जब मौका मिले आ ही जाऊँगी।”

ठकु० — “अच्छा तो कुछ देर और रुक जाओ। मैं अभी-अभी आती हूँ।

इतना कहकर ठकुराइन दूसरे घर में चली गई। दो कठोरे में खाने की चीजों को लेती हुई आई। उनमें से एक कटोरा पाचू की माँ को दे दी और दूसरा स्वयं अपने लिये रख ली।

पाचू की माँ — “ठकुराइन! यह तुम क्या कर रही हो? जब मैं आऊँ तब यही भँफट?”

ठकु० — “तुम भी बड़ी वैसी हो। भँफट क्या? मैं समझती हूँ कि दोनों एक साथ आनन्द मनाते हुए जलपान करें, पर तुम व्यर्थ समझ रही हो न?”

पाचू की माँ — “भला यह भी व्यर्थ है? खैर थोड़ा सा निकाल लो।”

ठकु० — “नहीं-नहीं मैं सोचती थी कि और भी लाऊँ। मालूम नहीं विचार फिर क्यों बदल गया। तुम जरा-सा को भी अधिक बत रही हो।

खाओ भी तो ।”

पाचू की माँ—“जब तुम ठकुराइन ही ठहरी तो फिर बात मान ही ली जाय ।”

दोनों जलपान करने लग गये और उनकी बातें भी जारी रहीं । जैसा कि स्त्रियों का स्वभाव है वे झटपट किसी वस्तु को खा-पी लेना पसन्द नहीं करतीं । खाते समय यदि साथ में दूसरो भी कोई स्त्री रहती है तो उनक क्या पूछना । बातें भी कर रही हैं और खाना भी खा रही हैं । एक पन्था दो काज ।

ठकु०—“इस बार तुम बहुत दिनों के बाद आई । अब ऐसे न करना ।”

पाचू की माँ—“नहीं-नहीं अब ऐसा न हो पायेगा । उमेश की शादी के बारे में सुनकर तो मैं बड़ा प्रसन्न हुई । अब तो महीने में दस बार आऊँगी । दूसरी बात यह भी है कि घर के सारे काम मुझे ही करने पड़ते हैं । इसी कारण अवकाश बहुत कम मिलने से न आ पाती थी । क्यों ? अब तो ठीक कह रही हूँ न ?”

ठकु०—“हाँ, ठीक तो कहती हो । दस बार क्या ? मैं तो कहती हूँ कि रोज आया करो । पर तुम ऐसा तो कर नहीं सकती । खैर, जब लुट्टी मिले सीधे इधर की ओर ही अपना रास्ता नाप लेना ।”

पाचू की माँ—“तुम भी अजीब बातें करतो हो । अच्छा यह तो बताओ कि उमेश की शादी कब होने जा रही है ?”

ठकु०—“विवाह की और अधिक बात मत पूछो । सिर्फ इतना ही जान जाओ कि अभी इसके विषय में चर्चा ही चल रही है ।”

पाचू की माँ—“तुम तो अभी तक निश्चय भी न कर पाई । लड़की मिले या न मिले तुमने तो अभी से ही विवाह का ढिंढोरा पिटवा दी है ।”

ठकु०—“बात कुछ ऐसी है कि उमेश ने अपना विचार अभी तक प्रकट नहीं किया है । उसके पिताजी से आज यह बात पूछ लूँगी और तब

कहीं इस बात का निर्णय हो पायेगा ।”

पाचू की माँ—“तो अभी तक तुम स्वप्न ही देख रही हो न ?”

ठकु०—“स्वप्न तो मैं आज कल रोज देखती हूँ, पर न जाने वह कब पूरा हो ।”

दोनों ने इस समय जलपान कर लिया था । उसी समय ठाकुर साहब भी घर में आ गये । उन्हें देखते ही पाचू की माँ उठ खड़ी हुई और अपने घर जाने की इच्छा प्रकट की । ठकुराइन ने भी उससे कभी-कभी उसके यहाँ आने का वचन लेकर जाने की आज्ञा दी । ठकुराइन ने ठाकुर साहब की लाठी सँभाल कर एक कोने रख दी और कुएँ से एक लोश जल भर कर ले आई । उस पानी से ठाकुर साहब ने अपने हाथ-पैर धोए और वे अपने कमरे की ओर चले गये । उनके कमरे में प्रवेश करने के कुछ देर पश्चात् ठकुराइन भी उस कमरे में गई । उसके दिल में यही कौतूहल था कि कब उसके पति महोदय आवें और वह उमेश के विवाह की बात को उनके सामने छेड़ दे । ठाकुर साहब के बैठ जाने के बाद वह भी सँभलकर बैठ गई जिससे उनको विश्वास हो गया कि उनकी स्त्री उनसे कुछ कहना चाहती है ।

ठा०—“ठकुराइन ! यह तो बताओ कि आज तुम जम कर क्यों बैठ गई हो ? मालूम होता है कि तुम कुछ मांग मेरे सामने पेश करना चाहती हो । यदि बात ऐसी है तो शीघ्र अपनी मांग को बतलाओ । मैं तुम्हें कई बार यह चुका हूँ कि तुम्हारी जो भी इच्छा हो निस्संकोच कह डालो । दूसरी बात यह भी है कि जितना जगह हो उतना ही पाँव पसारा जाता है । तुम्हारा स्वभाव मुझे कुछ अच्छा नहीं जँचता । मेरे दिल में संदेह पैदा हो जाता है कि कहीं लोग मुझे यह न कहा करें कि ठाकुर साहब तां बड़े अच्छे मिजाज के हैं, पर ठकुराइन की बात ही निराली है । यदि मैं अपने घर की परिस्थिति को न समझूँ और उसे सँभालने का प्रयत्न न करूँ तो करे कौन ? प्रायः देखने और सुनने में आता है कि मर्द का जैसा स्वभाव

रहता है उसके प्रतिकूल उसकी स्त्री का स्वभाव होता है। मैं नहीं कह सकता कि यह कहाँ तक सच है। फिर भी मैं कहता हूँ कि यह बात कुछ हद तक सही अवश्य है। यह दशा मैं अपने ही घर में देखता हूँ और इसलिये आज तुमसे भी कह डाला हूँ। तुम जानती ही हो कि स्त्री को पति से कैसा सलूक रखना चाहिये। अच्छे संगत से ही अच्छी सीख प्राप्त होती है। यदि अच्छा व्यक्ति भी बुरे संगत में पड़ जाय तो उसके विचार भी बुरे हो जाते हैं। मैं तुम्हें यह दोष नहीं देता कि तुम किसी खराब व्यक्ति से लगती हो। तुम लगती भी हो तो मुझसे ही। हो सकता है कि तुम मुझे बुरा समझती हो और इस प्रकार अच्छे दंग से बातें भी नहीं करती नहीं। मैं यह कहता कि मुझमें कुछ भी दोष नहीं है। दोष प्रायः सभी में हुआ करते हैं। मैं जहाँ तक सोचता हूँ कि मैं तुम्हें जो कुछ भी कहता हूँ तुम्हारी भलाई के लिये ही कहता हूँ। यदि मेरी बात को तुम कष्टदायक समझती हो तो इसका जवाब ही कुछ नहीं रह जाता। मुझे लोग भले पुरुषों में गिनते हैं और किसी की भी यह हिम्मत नहीं पड़ती कि वह मेरे चरित्र में लांछन लगावे। अब तुम्हीं बताओ कि मैं अपने को बुरा कैसे समझूँ। तुम स्वयं इस बात का फैसला कर सकती हो। तुममें यदि किसी भी विषय की ठीक करने की शक्ति नहीं है तो तुम अपने स्वभाव से स्वयं ही अपरिचित हो। इससे अधिक मैं तुम्हें और क्या बताऊँ ? तुम्हारी बातों को स्मरण करते ही मेरा मन आपे से बाहर हो जाता है। खैर, तो मैं बहुत कुछ कह गया। तुम्हें जो कुछ भी परमाना हो वह तुम साफ साफ शब्दों में मुझसे कह डालो। मैं तुम्हारे हित और अहित को भली प्रकार समझ करूँही उसी के अनुकूल कार्य भी करूँगा। मैं ऐसा काम करने को हरगिज तैयार नहीं जिससे मेरी मर्यादा तो जाती रहे और मैं किसी दूसरे के फेर में पड़कर अपने धर्म से भी च्युत हो जाऊँ।”

ठकु०—“आप इतना कह गये कि मैं सभी बातों का उत्तर भी न दे सकती हूँ। मैं स्वयं समझ नहीं पा रही हूँ कि मैं क्या बताऊँ ? भले बुरे

का ज्ञान तो सबको होता है। यदि कोई व्यक्ति अपने को ही भूलने लग जाय तो वह कुछ भी कर सकने को समर्थ नहीं। मैं अपने दिल में सोचती हूँ कि मैंने आज तक कभी भी किसी बात के लिये हट नहीं की है। घर की समस्या से बाध्य होकर ही मैं आप से कुछ कहना चाहती हूँ। यदि इस बात की ओर से भी आप अपना नजर फेर लें तो मैं कहीं की नहीं रह जाऊँगी।”

ठा०—“हाँ, तो मैं भी कितनी देर से यही बात पूछ रहा हूँ। तुम कहने में संकोच बिल्कुल मत करो। समय आते ही सारे कार्य ठीक हो जायेंगे।”

ठकु०—“मेरा यही कथन है कि उमेश भी अब कुछ बड़ा हो चला है। उसका विवाह कर देना बहुत आवश्यक जान पड़ता है। वह विवाह के कार्य को निपटा कर बहू को वहीं रहने दे और तब फिर अपने कार्य की चिन्ता करे। पढ़-लिख लेने के बाद उसके विवाह की कोई भ्रंश नहीं रह जाती। मालूम नहीं, वह भी अपने दिल में क्या सोचता होगा। यदि समय में ही किसी कार्य की पूर्ति नहीं हो पाती है तो बाद में बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। हम दोनों के सिर का सबसे बड़ा बोझ भी तो यही है। इसके हट जाने से हमलोग कहीं साँस ले सकते हैं। यदि हमलोग उसकी शादी समय में नहीं कर देते हैं तो लोग सन्देह की दृष्टि से हमलोगों की ओर देखेंगे।”

ठा०—“तुम यह बात मुझे क्यों सुनाती हो?”

ठकु०—“तो क्या कल से दूसरे को ही सुनाने जाऊँ न?”

ठा०—“ऐसा मैं कहता थोड़े ही हूँ।”

ठकु०—“तो फिर आप क्या कह रहे हैं? जब देखो तब वही बात। अपनी आदत भी कोई शीघ्र छोड़ता है?”

ठा०—“तो मैं बुरी आदत में फँस गया हूँ न?”

ठकु०—“ऐसा तो मैं नहीं कहती। मेरी बात को पहले ठीक से तो

समझेंगे नहीं और उल्टे ही मुझे दुनिया भर की बातें सुनाने लग जायेंगे। साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि आप लड़के की शादी नहीं करना चाहते? यदि आपकी यही सूझ है तो मैं अपने मायके में पत्र लिखकर इस समस्या का हल अवश्य करके ही छोड़ूँगी। आपके भरोसे में कितने दिनों तक इसी प्रकार बैठी रहूँगी? खाना पकाते-पकाते हाथ में फफोले पड़ गये और उसकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते। सौख से जमकर खाना खाने में कितना आनन्द आता है। रात-दिन बक-भक करते-करते मेरा मुँह भी थक गया। अब तो यही दीखता है कि यदि मैं मर जाऊँ तो कहीं यह कलंक मिट सकता है। कम से कम मेरी बातों पर जरा विचार भी कर लें, सो भी नहीं। ऐसा करने में तो पैसे लगते नहीं? फिर चुप्पी साधने तथा अन्त-सन्त बातें करने का मतलब ही क्या? आप तो चले हैं दूसरों को समझाने और शिक्षा देने पर अपने राम को भी कोई पूछे तब न?

ठा०—“इस तरह की बातें यदि बकना हो तो अपने मायके के आद-मियों को क्यों नहीं सुनाती? मुझे कहने से कुछ भी नहीं होगा। मैं तो कहने ही जा रहा था कि इसकी फिक्र तुमसे अधिक मुझे है। इसके पहले ही तुम जली-करी बातें सुनाने लग गई। यदि मायके का इतना गर्व है तो फिर मुझे सुनाने से फायदा? लड़का है मेरा और विवाह की फिक्र होगी, इनको। मैं तो बड़ा परेशान हो गया। तुम्हारा स्वभाव बदलने की कौन सी दवा है, मेरी सभझ में कुछ भी नहीं आती। यदि ऐसी दवा प्राप्त करने में कई सौ रुपये की जरूरत पड़ती तब भी खर्च करने से मैं पीछे नहीं हटता। पर करूँ क्या? डाक्टर लोग भी बड़े अच्छे हैं। इस रोग की दवा भी न बतलाकर मुझ में मुझे जहन्नुम में डालना चाहते हैं। देव! अब तुम्हीं आकर इसका उपचार बताओ। नहीं तो मैं बड़े संकट में पड़ जाऊँगा और कुछ भी करने को मैं समर्थ न हो सकूँगा। “दैव-दैव आलसी पुकारा।” यह सूत्र तो आलसी लोगों में लागू होता है। फिर मैं जैसा कर्तव्यशील व्यक्ति तुम्हें क्यों पुकारूँ? इतना समझते हुए भी मैं तुम्हें

इसलिये नहीं बुलाता कि तुम मेरी सहायता करने के लिए दौड़ पड़ो। तुम्हें तो आलसी लोगों का सहायक बनना है। इसके अतिरिक्त मैंने सुना है कि तुम बड़े दानी हो और जो कोई भी तुम्हें भक्ति से पूजते हैं उसकी प्रार्थना तुम अवश्य सुन लेते हो। इसलिये हे देव ! मैं तुम्हें भक्ति और श्रद्धा के साथ बुलाता हूँ और तुम यहाँ आकर मेरी स्त्री के स्वभाव में परिवर्तन कर दो। शायद तुम्हें स्वर्ग से उतरकर यहाँ तक आने में कठिनाई पड़ेगी। पर इसका जरा भी ख्याल न कर मेरी एक छोटी सी वंदना को अवश्य सुनो। यदि अब भी मेरी यही दशा रही तो मेरा मर-मिटना ही बेहतर है। तुम्हें और अधिक क्या बताऊँ ? तुम तो स्वयं अन्तर्यामी हो।”

ठकु०—“अब बाबू साहब कुछ ठिकाने में आये हैं। देखूँ तो कौन देव आकर इनकी बातों को सुन जाता है। अपनी स्त्री को तो ये ठीक से रख नहीं सकते और चले हैं ईश्वर के नाम से माला फेरने। अच्छा तो मैं भी देख ही लूँगी न ?”

ठा०—“तुम जाओ, अभी जाओ और अपने कार्य का चिंतन करो। मैं तुमसे माथापच्ची करना नहीं चाहता। कुत्ते का दुम बारह वर्ष तक सीधा करते रहा जब भी वह टेढ़ा का टेढ़ा ही रहता है।”

ठकु०—“अच्छा तो मैं भी चली। मैं भी कहाँ तक बक-भक्त करती रहूँ ?

ठकुराइन बाहर जा भी नहीं पाई थी कि इतने में ही उमेश सोकर उठा और पिता के कमरे में प्रवेश किया। वह कमरे के अन्दर जाते ही ताड़ गया कि माँ और बाप में कुछ संघर्ष चल रहा है। उसने अपने पिता के मुँह पर क्रोध की रेखाओं को देखा और साथ साथ उनके लाल-लाल नेत्रों को भी। उसने अपनी माँ के चेहरे की ओर भी खूब गौर से देखा। उसका चेहरा मलीन हो गया था और मालूम पड़ता था कि वह भीतर ही भीतर क्रोध से जल रही है। उमेश समझ गया कि उसे इस समय कोमलता से बातचीत करना चाहिये। ऐसा न करने से हो सकता है कि माँ-बाप का

क्रोध कहीं उस पर भी न पड़ जाय। वह मन ही मन सोचने लगा कि इस तर्क-वितर्क का कारण वही है। वह यह भी समझ गया कि विवाह की बात छिड़ जाने से ही माँ-बाप दोनों के मुख की आकृति बदल गई है। अब उसे बड़ी होशियारी से बातचीत करना है। उसे डर है कि यदि वह ऐसा करने में चूक जाता है तो क्रोध में आकर कहीं उसके पिता उसकी पढ़ाई का बाधक न सिद्ध हों। उसने अपने मन में विचारा कि उसकी पढ़ाई को परीक्षा इसी समय है और अपने कार्य में सफलभूत होने के लिये उसे बड़ी कुशलता से अपना काम निकालना है। इसीलिये बड़े सोच-विचार के बाद वह पिताजी से बोल उठा।

उमेश—“पिताजी ! मुझे कल तड़के ही यहाँ से चल देना है। अब तो शायद परीक्षा के बाद ही लौटूँ। बीच में आने से पढ़ाई में बाधा पड़ जाती है। परीक्षा के समय एक दिन का भी नष्ट करना अपना बहुत बड़ा नुकसान करना है। अब कहिये आपकी क्या राय है ?”

ठाकुर साहब—“बेटा उमेश ! मैं तुम्हें अपने कार्य से वंचित रहने देना नहीं चाहता। तुम कल सवेरे ही स्नान करके कुछ खा-पीकर चल देना। अब तो तुम्हें भी घर सँभाल कर रहना पड़ेगा। मैं तो इस चुड़ैल से परेशान हो गया। कितना भी कुछ कहा जाय बेवकूफ तो अपने आप बनना पड़ता है। सवेरे तो तुमने भी देख ही लिया। घर में कितना तूफान मचाती रहती है। रोज यही हालत है। इसपर उल्टे ही अपने मायके की डाँग हँकती है। मेरा तो दिमाग खराब होते जा रहा है। यदि तुम बाहर ही बाहर रहोगे तब तो बड़े दुःख की बात है। मैं जहाँ तक सोचता हूँ तुम मेरी बात मान कर परीक्षोपरान्त अपने घर का कामकाज देखने लग जाओगे।”

उ०—“आखिर बात क्या है, पिताजी ? मैं भी तो सुनूँ। इस तरह घर में कलह होना तो अच्छा नहीं दीखता।”

ठकु०—“मैंने भी किस मुहूर्त्त में इससे शादी की। परिङत लोग तो माथे पर चन्दन लेपन करते हैं पर वे ठीक साइत को भी नहीं बता सकते।

वे तो कुछ मन्त्रों का उच्चारण कर अपना पेट-पूजा कर लेते हैं और उस पर भी दक्षिणा से जेब गरम करके पीठ दिखला कर प्रस्थान करते हैं। इन झूठे मन्त्रों के उच्चारण से किसी दूसरे का गला घोटना क्या कभी अच्छा हो सकता है ? कहाँ का बला मैं अपने सिर पर रख लिया हूँ। इससे कहीं अच्छा था कि मैं आजन्म विवाह न करता और सुख से जीवन यापन करता।”

उ०—“पिताजी ! जो हो गया होने दीजिये। बीती हुई बात का ख्याल करना अच्छा नहीं जान पड़ता। अब वर्तमान और भविष्य के कार्यों को सोचकर करने में ही सुख मिल सकता है। इस प्रकार आपको चिंतित न होना चाहिये। इससे मेरा दिल भी टूक-टूक हो जाता है। शादी आपने अच्छे साइत में की है और इसका नतीजा भी अन्त तक अच्छा ही निकलेगा। मेरे ख्याल से परिडित लोगों का कोई दोष नहीं है। उनका तो यह पेशा ही है। अब कार्य सिर्फ इतना ही करना रह गया है कि घर की स्थिति को सँभाली जाय और बिगड़ती हुई दशा को बनायी जाय।”

ठा०—“अब तुम्हीं बताओ बेटा ? मैं कहाँ तक क्या कर सकता हूँ ?”

उ०—“आखिर बात भी तो बताइये न, पिताजी ! हो सके तो मैं भी अपनी सलाह दे सकूँ।”

ठा०—“बात तो और कुछ नहीं है। तुम्हारी माँ कहती है कि खाना बनाते-बनाते उसके हाथ जल गये हैं। यदि तुम्हारी शादी हो जाय तो उसे कुछ सुख मिल सकता है। मैंने उससे कहा कि इसकी फिक्र तो मुझे है। मैं इस कार्य में लगातार कोशिश भी कर रहा हूँ। ऐसे तो बहुत से लोग मेरे पास आये और गये। हो सकता है कि उनमें से कितने भले हों और कितने बुरे। मेरा धर्म तो यह नहीं कहता है कि मैं जिसे चाहूँ तुम्हारी शादी के लिये वचन दे दूँ। मैंने सबों से यही कह दिया कि पुत्र से सलाह लेने पर ही मैं इसका ठीक उत्तर दे सकता हूँ। बिना सोचे-समझे किसी कार्य को तुरन्त कर लेना भी तो अच्छा नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि मेरी तरह

तुम्हें भी जिन्दगी भर पछताते रह जाना पड़े। यदि भले घर की पढ़ी-लिखी कन्या हो तब तो ठीक ही है। उसे देखना तो अनिवार्य है ही, साथ-साथ उसके गुणों की परीक्षा लेना भी परमावश्यक है। किसी भी कन्या को मैंने अपनी आखों से नहीं देखा है और इसीलिये तुम्हारे बिना बचन देने में भी आज तक असमर्थ रहा। मैंने सोचा कि तुम्हारे यहाँ आने पर उचित राय दे सकूँगा। तुम्हारी माँ का भी कहना है कि शादी शीघ्र हो जाय और इस भार को अपने सिर से जल्द हटाया जाय। भला यह भी कोई शादी है? आगे पीछे का कुछ भी ख्याल न कर तुरन्त शादी कर देना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। बहू तो एक दो दिन के लिये आयेगी नहीं। वह तो अपनी जिन्दगी भर इसी घर में रहेगी। ऐसा काम क्यों न किया जाय जिससे सबकी भलाई हो और बाहरी व्यक्ति भी दोषारोपण न करने पावें। तुम्हारी माँ तो दिन भर मुझसे जलती रहती है। मेरे प्रति उसका ऐसा व्यवहार क्यों है, मैं कुछ भी नहीं समझ पाता। शायद वह बहू को देखने और उससे काम लेने के लिए उत्सुक हो। यदि बात ऐसी है तो मैं इस विचार से बिल्कुल परे हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि तुम्हारा जीवन सुख से कटे और पति-पत्नी का अच्छा जोड़ा देखकर सभी लोग तुम्हें सह-राने लगें। ऐसी बहू किस काम की जो रात-दिन घर में कलह मचाती रहे। इसीलिये तो विवाह का कार्य खूब सोच-समझ कर किया जाता है। अब तुम्हीं बताओ, मैं किस गलत रास्ते पर हूँ ?”

उ०—“बाबूजी ! आपका कहना बिल्कुल सही है। इस बात को कोई भी नहीं काट सकता। मुझे आश्चर्य हो रहा है कि एक ओर तो पढ़ाई है और दूसरी ओर शादी का मामला। दोनों कार्य एक ही साथ किस तरह चल सकते हैं ? पढ़-लिख लेने के पश्चात् तो जो कुछ भी किया जा सकता है। यदि विद्यार्थी-जीवन में ही विवाह का भार ढोना पड़े तो वह व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। मेरी उमर भी तो अभी क्या गई है ? जब कुछ समझने लायक नहीं हो जाऊँ तो किसी कार्य को सोच-समझ कर उसे

करूँ। अब जो कोई भी आपके पास आवे तो उससे कह दीजियेगा कि मैं अभी शादी करना नहीं चाहता। जब एम० ए० पास कर लूँ तब कहीं विवाह की चिन्ता करूँ। अभी कोई खःस हड़बड़ी भी तो नहीं है।”

ठकु०—“नहीं बेग ! ऐसी बात नहीं है। जब तक मैं इधर तुम्हारे विवाह की चर्चा चलाऊँ तब तक तो तुम भी परीक्षा दे चुकोगे। परीक्षा के बाद शादी कर लेने में कोई दोष नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि तुम अब इससे अधिक न पढ़ो और घर का काम सँभाल कर बैठ जाओ। देखते ही हो, रात-दिन की यह खट-खट अच्छी नहीं होती। अच्छे घर में अच्छा ही व्यवहार भाता है।”

उ०—“पिताजी ! यह तो ठीक है कि घर का व्यवहार अच्छा रहे। मेरी इच्छा यही है कि अब दो वर्षों की पढ़ाई मैं क्यों कर बाकी रखूँ ? उतना हो जाने पर फिर मैं आगे की चिन्ता नहीं करता। सिर्फ दो ही वर्षों के लिये समय क्यों नष्ट किया जाय ? दो वर्ष तो देखते ही देखते बित जाते हैं। यदि समय में ही कुछ कर न पाया तो बिता हुआ समय फिर लौटकर तो आ नहीं सकता। इतना होने पर भी मेरा कुछ जोर तो है नहीं। मैं आप ही के ऊपर निर्भर हूँ। आप जो कहें मुझे स्वीकार है। पर मेरी प्रबल इच्छा यही है कि और दो वर्ष का समय विश्वविद्यालय में ही बिताऊँ।”

ठा०—“जब तुम हठ करते हो तो फिर मैं तुम्हें क्यों रोक्ऊँ ? यह भी ठीक है कि समय को जाते देर नहीं लगती। मेरा एक मात्र पुत्र तो तुम्हीं हो। यदि तुम्हारी इच्छा भी पूर्ण न कर सकूँ तो लोग मुझे क्या कहेंगे ? इसका भी तो मुझे डर है ?”

उ०—“नहीं पिताजी ! लोग चाहे जो कुछ भी कहें इसका आपको कुछ भी डर नहीं। यदि आप अपने कर्तव्य के पथ पर दृढ़ हैं तो कोई भी आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि आप अपने कर्म को न छोड़ें।”

ठा०—“अच्छा बेटा ! तो तुम एक काम करो । यदि भले घर की कन्या मिल जाय तो तुम परोक्षोपरान्त विवाह कर लेना । अगर तुम आगे भी पढ़ना चाहो तो पढ़ सकते हो । जहाँ तक तुम्हारी पढ़ने की इच्छा है, तुम पीछे न हटो । तुम्हें खर्च के लिये तो कुछ भी तकलीफ हो नहीं सकती । यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो तुम्हारे सभी कार्य अवश्य पूरे होंगे ।”

उ०—“जब आप कहते हैं तो मैं विवाह कर लूँगा । हो सकता है कि मैं आगे न पढ़ सकूँ । विवाह के पश्चात् बहुत से लोग आगे पढ़ नहीं सकते । ऐसा करते हुए मैंने बहुत से विद्यार्थियों को देखा भी है । मैं नहीं कह सकता कि विवाह उन्नति के मार्ग में इतना बड़ा बाधक क्यों सिद्ध होता है । यदि मेरा भी यही हाल हुआ तो मेरे सभी अरमान अधूरे रह जायेंगे और मैं सदा पछताता रहूँगा । इस समस्या का हल मैं अभी क्यों न कर लूँ जिससे भविष्य में मुझे सुख-प्राप्ति हो । यही सोचकर मैंने आपसे कहा कि मैं कुछ और अधिक पढ़ूँगा । विवाह करना तो अपने हाथ की बात है । जब चाहूँ कर सकता हूँ । परिणत लोग अपशकुन को भी शकुन बताने में बड़े धूर्त-बाज होते हैं । यदि घर और कन्या का ग्रह नहीं भी मिलता है तो किसी न किसी तरह अपने विचारों से मिला कर ही साँस लेते हैं । इस विषय में मैं तो विल्कुल अनभिज्ञ हूँ । अब मेरा कहना यही है कि आप जैसा उचित समझें करें । इसके अतिरिक्त मैंने अपने विचारों को आपके सम्मुख प्रकट कर ही दिया है ।”

ठकुराइन—“देखा उमेश ! ये बड़े अच्छे घर देखने चले हैं । मुझसे विवाह करने में तो इन्होंने अपनी परिणताई का खूब परिचय दिया । अब चले हैं तुम्हें फँसाने । बहेलिया चिड़ियों को फँसाने में बड़ा चालाक होता है । कुछ चिड़ियाँ तो उससे भी अधिक चालाक निकलती हैं । मेरी यही राय है कि तुम किसी भी चालबाजी में मत पड़ो । अपने दिल से पहले खूब सोच लो, फिर जैसी इच्छा आवे वैसा करना । यदि मेरी बात पर विश्वास नहीं करोगे तो अन्त में तुम्हें पता चल ही जायगा कि मैं ठक

कहती थी या गलत।”

उ०—“माँ ! मैंने तो सदैव तुम्हारी आज्ञा का पालन किया है। तुम स्वप्न में भी नहीं सोच सकती हो कि मैं तुम्हारे अहित का ख्याल करके अपनी शादी करूँ। पिताजी का कहना मैं किसी भी हालत में गलत मानने को तैयार नहीं। तुम यदि गलत समझती हो तो जरा मुझे इसका कारण तो बताओ। पिता अपने पुत्र को कभी नहीं फँसा सकते। हाँ, पुत्र अपने पिता को धोखा दे सकता है। यदि पिता और पुत्र अपनी-अपनी कमाई से अलग रह कर अपना-अपना गुजारा करते हैं तो भी पिता अपने पुत्र की हानि भी नहीं सोच सकता। यदि पुत्र दुष्ट भी हुआ तो पिता उसके दोष को मिटाने के लिये कठोर परिश्रम करता है। इसके बदले में पुत्र पिता के रास्ते में काँटे बिछाने तक को तैयार हो जाता है। यह होता है पुत्र की अल्प-बुद्धि के कारण या स्त्री की बातों को सुनकर। अब तुम्हीं बताओ कि कौन गलत रास्ते पर है ? तुम बातें तो करती हो बहुत अधिक पर न जाने उनका मतलब होता है या नहीं। इसका भी तुम्हें कुछ ख्याल नहीं रहता। यदि ख्याल करती तो तुम इस तरह की बातें कभी न करती। मैं तुमसे प्रार्थना करके कहता हूँ कि तुम पिता की बात को मान लिया करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है और तब कहीं तुम्हारी दशा सुधर सकती है।”

ठकु०—“धेय उमेश ! मेरी माँ भी तो कोई गलत नहीं है। यदि आज से ऐसा होने लगे तो सभी के माँ-बाप अपने पुत्र का विवाह करना छोड़ दें। इस तरह से औलाद की वृद्धि किस प्रकार संभव है ? पुत्र की शादी के लिये यदि माँ-बाप ख्याल न करें तो और कौन करेगा ? उल्टे मुझे ही ना समझ बना रहे हो न ? खैर, पुत्र भी अपने पिता का पक्ष ले तो मुझे कौन पूछे ? तुम दोनों जने मिलकर मेरे अच्छे विचार को भी दूषित कर रहे हो। अब मैं समझी, कहाँ तक तुम लोग मेरी बात रखने को तैयार हो।

उ०—“माँ ! तुम यह कैसी बात करती हो ? बाबूजी का विचार और

तुम्हारा विचार एक है। क्योंकि तुम दोनों माँ-बाप की यही इच्छा है कि मेरी शादी हो जाय, ताकि घर के कामों में बहू से कुछ सहायता अवश्य मिले। फर्क सिर्फ इतना ही है कि पिताजी जरा सोच-समझ कर शादी कर देना चाहते हैं और तुम चाहती हो कि शादी तुरन्त हो जाय और अभी तथा इसी समय हो जाय। इस तरह के विवाह को विवाह नहीं कहा जाता है। यह तो जाल में फँसाने की नींव मात्र है। इस प्रकार शादी का मामला बढ़ा जटिल होता है। इसे सोच-विचार कर न की जाय तो दाम्पत्य-जीवन निरर्थक है। यही तो मुख्य कारण है कि पति कहते हैं कुछ और औरत करने लगती है कुछ। इस प्रकार का व्यवहार कभी अच्छा नहीं। यह दो में से किसी के लिये भी अच्छा नहीं दीखता। मैंने बहुतों के घर में ऐसा होते देखा है। जहाँ इस तरह का व्यवहार होता है वहाँ पड़ोसी जन ही लाभ उठाते हैं। ऐसे घर की मर्यादा मिट्टी में मिल जाती है और वह घर यदि वैभव से सम्पन्न है तो वह कुछ दिनों में ही रसातल को पहुँच जाता है। यदि सभी घर की स्त्रियाँ अपने चरित्र को सुधारने में लग जाय तो घर-घर में लक्ष्मी का आगमन हो। अच्छा, तो बात यही है कि शादी किस प्रकार की जाय। अभी-अभी मैंने बताया कि खूब सोच-समझ कर किया हुआ विवाह का फल अच्छा होता है और इसके लिये पिताजी खूब मनन भी कर रहे हैं। हम दोनों को इस बीच में बोलने की क्या जरूरत? मैं शादी करूँगा और किसी समय अवश्य करूँगा, पर खूब सोच-समझ कर हो। किसी के कुछ कह जाने से मैं उसकी बात की ओर बिल्कुल आकर्षित नहीं होता, जब तक कि मैं स्वयं परिस्थिति को जान न जाऊँ। अभी तो मेरी पढ़ाई चल रही है न? फिर इसमें बाधा डालने की चेष्टा मत करो।”

ठकु ०—“मैं कहती हूँ कि तुम विवाह के भंभट से मुक्त होकर बहू को यहीं छोड़ दो। उसे किसी भी प्रकार की तकलीफ न होने पायेगी। मैं इसके लिए हमेशा सतर्क रहूँगी। तुम अपनी पढ़ाई क्यों छोड़ते हो? जहाँ तक हो सके तुम अपनी इच्छा की पूर्ण सन्तुष्टि कर लो।”

उ०—“बहू तो तुम्हें और कुछ करेगी नहीं। हाँ, तुम्हारे कामों में मदद दे सकती है और तुम्हारी कुछ सेवा भी कर सकती है। यदि इन कार्यों के लिये नौकरानी रखी जाय तो कैसा रहेगा ? मैं समझता हूँ कि वह करीब-करीब तुम्हारे सभी कार्यों में अपना हाथ बँटायेगी और समय कुसमय तुम्हारी कुछ सेवा भी कर दिया करेगी। मैं पढ़-लिख लेने के पश्चात् स्वयं ही किसी भले घर की लड़की की तलाश करके तब कहीं विवाह के लिये तुमसे अनुमति माँगूँगा। बहू के घर आ जाने पर नौकरानी को हटा लेना और अपना कार्य करती रहना। इससे तुम्हारा कार्य भी चलता रहेगा और तुम विवाह के दोष से मुक्त हो जाओगी। लोग तुम्हें दोषी न ठहरा सकेंगे। क्योंकि मैंने खुद अपनी इच्छा से लड़की को पसन्द किया है और इसका उत्तरदायी मैं हूँ, दूसरा कोई नहीं है। इस कार्य का भार मैं पिताजी के ऊपर भी नहीं छोड़ना चाहता। उन्हें अपने कामों से ज़रा भर भी अवकाश नहीं मिलता और यह देखते-देखते भी मैं उनके सिर पर दूसरा बड़ा बोझ मुझ में क्यों डालूँ ?”

ठकुर०—“अच्छा, तो शादी करने की इच्छा तुम्हारी कब है ?”

उ०—“कहा तो, पढ़-लिख लेने के बाद। अभी नहीं। लड़की का तो कुछ पता नहीं, अभी से ही विवाह का दिंदोरा पिटवा दूँ। लोग मुझे पागल नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे ? मैंने तो एक बार कह दिया कि मैं इस विषय में दूसरे से कुछ नहीं कहना चाहता। चाहे तुम क्रोध करो या खुश रहो। मेरा जहाँ तक ख्याल है मैंने उचित ही कहा है। तुम चाहे अच्छा समझो या बुरा।”

ठाकुर साहब—“बेटा उमेश ! इससे ज्यादा बातें करने पर तुम्हारा दिमाग भी खराब हो जायगा। जाओ, तुम अपना काम देखो। अब तो परीक्षा के सिर्फ दो मास ही रह गये हैं। उसके बाद तो शायद लम्बी छुट्टी मिलेगी। उसी समय विवाह के कार्य का निपटारा कर निश्चित रहना। अभी इस झमेले में मत पड़ो।”

उ०—“पिताजी ! मेरे लिये आप भी परेशान न हों । मैं इसके लिये आप प्रयत्न कर लूँगा ।”

ठा०—“यह कैसे हो सकता है कि मेरे रहते तुम अपनी मनमानी करो ? तुम सिर्फ पढ़ने में ही अपना दिल लगाओ । तुम्हें शादी करनी है इससे क्या ? पुत्र के विवाह का भार पिता के ऊपर यों ही पड़ हो जाता है ।”

उ०—“पिताजी ! मैं अपनी मनमानी करना तो नहीं चाहता । मेरा विचार सिर्फ इतना ही है कि मैं अपनी शादी अपने मन से करूँ । मैं स्वयं लड़की के घर जाकर उसके गुणों की परीक्षा कर लेने के पश्चात् ही अपना विवाह कर सकता हूँ यदि लड़की के माँ-बाप को यह पसन्द नहीं तो मैं उनकी भी परवाह नहीं करता । मैं यह काम किसी दूसरे को सौंपना नहीं चाहता । यदि लड़की विदुषी है और उसका चरित्र अच्छा है तो लड़की को दिखलाने में उसके माँ-बाप कुछ भी संकोच नहीं करेंगे, ऐसा मेरा ख्याल है । विवाह जीवन का मुख्य कर्म है यदि बिना सोचे-विचारे ही विवाह का कार्य सम्पन्न किया जाय तो लेने के देने पड़ जायँ । मैं यह मानने को कभी मजबूर नहीं कि मैं दूसरे के फेर में पड़कर जिन्दगी भर रोता रहूँ । ऐसा मैं कभी नहीं कर सकता और कभी करने को तैयार भी नहीं । न मालूम आपने अपनी शादी किस प्रकार की । उसी विवाह के जरिये तो आज आप अपने भाथे पर हाथ रखकर अपने भाग्य को कोस रहे हैं । कहीं ऐसा न हो कि मैं भी बड़े संकट में पड़ जाऊँ और अपने जीवन को समूल नष्ट कर दूँ । पिताजी ! यदि आप बुरा न मानें तो इस कार्य को मुझपर ही छोड़ दें । हालांकि मैं जानता हूँ, आप मेरे पूज्य हैं और आपकी हर बात मुझे माननी चाहिये । पर मेरी यह उत्कट अभिलाषा है कि मैं भी अपनी एक इच्छा की सन्तुष्टि करूँ । मुझे यह विश्वास है कि आप इस कार्य को सुचारु रूप से कर सकते हैं । भले ही मैं बहू की पहचान में गलती कर जाऊँ, उसकी परवाह आप बिल्कुल मत कीजिये । घर आने पर यदि

वह बखेड़े उत्पन्न करती है तो मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे उचित मार्ग दिखलाने का प्रयास करूँगा। आप पूरा इतमीनान रखें और पूर्ण विश्वास करें कि आपका पुत्र किसी भी हालत में उन्नति के रास्ते को छोड़ कर अवनति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। आपकी यही इजाजत लेने के लिये मैं रुका हुआ हूँ। आप आज्ञा दें तो मैं पढ़-लिख लेने के बाद इस कार्य को पूरा करके आपको दिखाऊँ! आपने आज तक मेरी सभी आशाओं की पूर्ति की है और आज भी मैं उम्मीद करता हूँ कि एक पुत्र के हेतु आप मेरे विवाह को मेरे ही हाथों सौंपने के लिये कोई आनाकानी न करेंगे।”

ठा०—“बेटा ! मैंने तुम्हारी सभी इच्छाओं को पूर्ति की ही और कर भी सकता हूँ। यदि तुम अपना विवाह अपने ही विचार से कर लोगे तो लोग मुझे क्या कहेंगे ? तुम और हम तो संतोष करके बैठ सकते हैं, पर दूसरे के मुँह को कैसे बन्द किया जाय। हाँ, दो-चार आदमी मेरी बात मान सकते हैं, सभी नहीं। विवाह कुछ ऐसा मुख्य कर्म है जो घर के मुख्य व्यक्ति की अनुमति से ही किया जाना चाहिये। अगर ऐसा नहीं होता तो शर्म के मारे मेरी गर्दन झुक जाती है और तब मैं किसी को अपना मुँह दिखलाने लायक नहीं रह जाता। यदि तुम अपने पिता की प्रतिष्ठा को बनाये रखने में संकोच मानते हो तो तुम्हारी सब पढ़ाई व्यर्थ सिद्ध होती है और लोग आपस में काना-फूसी करने लग जाते हैं। तुम इस गरूर को बिल्कुल हटा दो और मेरे कथनानुसार चलो। यदि मैं तुम्हारे हित की बात नहीं कहता हूँ तो जैसा उचित समझो करो। इसके पहले तुम अच्छी तरह सोच लो कि तुम्हें कैसा काम करने से यश मिल सकता है। तुम इतने पढ़-लिख तो गये, पर अपने बाप की बात को भी झट् मानने को तैयार नहीं होते हो। किसी भी किताब में यह तो नहीं लिखा रहता है कि बाप की बात को उसका पुत्र न माने। जब तुम बड़े हो जाओगे और कुछ बच्चे के बाप बनोगे तभी तुम्हें ख्याल आवेगा। मैं जब तक जीवित रहूँगा तुम्हें गोद के बच्चे की

तरह ही देखूँगा। पिता के सामने यदि उसका पुत्र वृद्धावस्था को पहुँच भी जाता है तो वह एक छोटे बच्चे की तरह ही माना जाता है। तुम अभी व्यावहारिक बातों को क्या जानो? इसीलिये मैं तुमसे बार-बार कहता हूँ कि लोगों के सामने मुझे अपना सिर उठाये रहने दो। यदि आज लोगों के सामने मैं अपने सिर को झुका लेता हूँ तो इससे अधिक मेरा जीना व्यर्थ हो जाता है।”

उ०—“पिताजी! मैंने आदमियों से यह कहते हुए सुना है कि अपने आदमियों के यदि सैकड़ों कार्य अच्छे किये जायँ तो वे कुछ भी भला नहीं समझते। यदि एक भी काम करने में देर हो या वह कार्य शीघ्र पूरा न होने पावे तो कार्य करनेवाले व्यक्ति के ऊपर गलियों की बौछारें पड़ती हैं। मैं कभी कह नहीं सकता कि मैंने किसी भी समय आपकी आज्ञा पालन करने में कभी त्रुटि किया है। यदि ऐसा करता तो न जानें आज क्या नश्वित जाता। जब तक पुत्र कमाने लायक नहीं हो जाता तब तक वह अपने पिता के भरोसे पर रहा करता है। मैं भी आप पर अपना अटल विश्वास जमाये रखता हूँ और आप ही के समक्ष कुछ कहने का अधिकारी भी हूँ। मेरी बात चाहे अधूरी ही रह जाय इसके लिये मुझे तनिक भी चिंता नहीं। हो सकता है, मैं बड़ा होने पर अपनी चाह को पूर्ण करूँ। मुझे यह कहते बड़ा दुःख होता है कि जब मेरे लिये इतने रुपये बहाने को तैयार हो जाते हैं तो आप एक छोटा-सा कार्य मेरे जिम्मे क्यों नहीं छोड़ देते? आप जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिये मैं विवाह का कार्य बड़ा नहीं समझता। लड़कियों के संरक्षक तो अपने आप ऐसे व्यक्ति के पास चले आते हैं। हाँ, गरीबों के लिये विवाह एक बहुत बड़ी वस्तु मानी जाती है। उन्हें चारों ओर भटकने पर भी अच्छी लड़की शीघ्र नहीं मिल सकती। अतः मजबूर होकर उन्हें चाहे जिस प्रकार की लड़की मिले, विवाह का कार्य समाप्त करना ही पड़ता है। इस तरह के विवाह को मैं कभी अच्छा नहीं समझता। आपसे मेरी विनय यही है कि मेरी शादी के लिये आप

अधिक चिंतित न हों। अपने कार्य का खरब मुझे खरब ही करना है। इसके लिये मैं पहले से ही सतर्क हूँ।”

ठा०—“यदि मनमाना करना हो तो बाहर करो, यहाँ नहीं। एक तो इस पिशाचिनी ने मेरा दिमाग ही चाट डाली और अब तुम चले को मुझे बेवकूफ बनाने। पिता की भलाई सोचने वाले बहुत ही कम पुत्र हुआ करते हैं। जब उनके हाथ पैर लगने लगते हैं तो पिता को तृणवत् समझने लग जाते हैं। यदि मैंने बचपन में तुम्हारा ध्यान न दिया होता तो अब तुम मेरे सामने इस तरह की बातें नहीं कर सकते। इस बात का तो जैसे होश ही नहीं है। स्त्री से लड़ते-झगड़ते किसी तरह पिण्ड छूट गया था और अब यह उलभ पड़ा। मैं समझ ही नहीं पाता कि मैं अब क्या करूँ ? ”

उ०—“पिताजी ! इसे मनमाना नहीं कहा जाता। यदि पुत्र अपनी एक छोटी सी माँग को पिता के सामने पेश करे तो ऐसा करना क्या पुत्र का अधिकार नहीं ? माँग की पूर्ति हो अथवा नहीं इसकी बात तो दूसरी है। किसी भी माँग को बिना सोचे-समझे ठुकरा देना कहाँ का न्याय है ? आप कह देते कि आप सोचकर किसी और दिन इसका जवाब देंगे। न तो ऐसा करने को उद्यत हैं और न मेरी एक बात ही रखना चाहते हैं। मैं भी तो कोई बालक नहीं हूँ कि इतना भी न समझूँ। यह तो मेरे मास्टर साहब की भी उक्ति है कि उनके शिष्य खूब सोच-विचार कर अपना विवाह किया करें। इसका कारण था कि उक्त मास्टर साहब को अपनी स्त्री से कभी भी नहीं पटती थी। उन्होंने मेरा भला सोचकर और सांसारिक बातों को भली प्रकार समझ कर ही मुझे यह आदेश दिया। अब मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन किस प्रकार कर सकता हूँ ? विद्या-प्राप्त करने का फायदा तभी होता है जब कि गुरु के कथनानुसार तथा पुस्तक में लिखे हुए मार्ग पर चलने का प्रयत्न किया जाय। इसके साथ-साथ मेरा यह धर्म नहीं कि मैं आपका कहना न मानूँ। आप तो मेरे पूज्य हैं और मुझे हर काम में

आपसे सलाह भी लेनी है। यदि मैं आपसे राय लेने मैं चूकता तो कहीं मेरा दोष था। मैंने तो ऐसा किया भी नहीं और न करने का साहस भी कर सकता हूँ। मैं अंत समय तक आपकी कही गई बातों को मानूँगा। यदि मेरी भी एक बात को आप रख दें तो मेरे दिल में एक बहुत बड़ा उत्साह उत्पन्न हो और कार्य करने की लगन हो।”

ठा०—“उमेश ! तुम जैसा उचित समझो करो। मैं अब इस विषय में और कुछ भी नहीं कहना चाहता। तुम अपनी इच्छा को पूर्ण करो और साथ-साथ अपना इज्जत का भी खयाल रखो। मैं तो अब बुझा हो ही चला हूँ। मेरी बात को मानने से यदि किसी को चोट पहुँचती है तो मैं ऐसा कार्य करने को क्यों उतारूँ ? मैं तो अब अन्तिम यात्रा कर ही जाऊँगा। फिर अपनी प्रतिष्ठा खोजकर ही क्या करूँ ? जितना किया अब वही पर्याप्त समझता हूँ। मैंने तुम्हारे लिये बहुत कुछ किया और शायद थोड़े ही लोग ऐसा कर पाये हों ! मैंने सोचा था कि मैं तुम्हारी सारी व्यवस्थाएँ कर दूँ जिससे तुम जिन्दगी भर सुखी रहो। धन-दौलत तो हाथ की मैल है। आज है, कल नहीं। अन्त में विद्या ही काम आती है। यही सोचकर मैंने तुम्हारी पढ़ाई के लिये कोई कसर उठा नहीं रखा। यह तो तुम खुद ही कह सकते हो। इसके अतिरिक्त मैंने यह भी सोचा था कि मैं तुम्हारे लिये ऐसी व्यवस्था कर दूँ जिससे लोग मेरी तरह तुम्हें इज्जत की दृष्टि से देखा करें। मेरे बाद तो घर के मालिक तथा एक बहुत बड़ा जमींदार तुम्हीं होंगे। तुम्हें अपनी रैयत से किस प्रकार का सलूक रखना चाहिये यह तो तुम्हें शीघ्र ही समझ जाना चाहिये। इतने बड़े कार्य को सँभालना कोई मामूली खेल नहीं है। यदि तुम अभी से ही इस कार्य की ओर अग्रसर न होगे तो तुम लोक-प्रिय न बनने के कारण बुरा-भला कहलाने में भी बाज न आओगे। पढ़े-लिखे लोग तो इशारे से ही सब कुछ समझ लेते हैं। उन्हें और अधिक समझाने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। वे व्यवहारिक बातों से ही अनभिज्ञ रहते हैं और यदि किसी से बहस हुई भी तो लगते हैं दुनिया भर की बातें

बनाने । वे अभिमान में हतने चूर रहते हैं कि उनका पूछना ही क्या है ? थोड़ी-सी भी अंग्रेजी भाषा जान ली तो बस् बन बैठे विलायती बाबू ! चाहे पेट में चूहा क्यों न कूदता हो, इसकी परवाह उनको बिल्कुल ही नहीं रहती । यही दशा मैं तुम्हारी भी देखता हूँ । विद्याभ्यास तो बड़े कठिन और तप द्वारा ही संभव है । तुम तो विलासिता के रंग में रंग चुके हो । यह तो तुम्हारी वेश-भूषा से ही मालूम होता है कि तुम अब पहले के उमेश नहीं रह गये हो । तुम शायद समझते होगे कि रुपये-पैसे तो पर्याप्त मिलते ही हैं फिर उन्हें पानी की तरह क्यों न बहाया जाय । खैर इसकी चिंता मैं नहीं करता । मैं तुम्हारे लिये भला कहता हूँ या बुरा यह तो तुम भी जान सकते हो । एक बार मैं तुमसे पुनः कहता हूँ कि तुम मेरी बात की ओर अवश्य ध्यान दो और आँखें मूंद कर अन्त समय तक उसे निभाने की चेष्टा करो ।”

उ०—“पिताजी ! मुझे यह भी मालूम है कि जमींदारी का भार मुझे ही वहन करना है । आपकी कही गई सारी बातों को मैं मानने के लिये हरदम तैयार हूँ । आप कभी नहीं कह सकते कि दूसरे आदमियों की तरह मैं कभी आपसे लड़ बैठा हूँ । हाँ ! बात कुछ ऐसी है कि जैसा समय पड़े वैसा ही काम भी करना चाहिये । परिस्थिति के अनुकूल कार्य करने से ही सफलता के सोपान पर चढ़ा जा सकता है । आज मुझे सूखी रोटी से भी वंचित होना पड़े तो उस समय मैं राजशाही खाना की ओर किस प्रकार दौड़ सकता हूँ ? मैं आपसे पूछता हूँ कि यदि कोई व्यक्ति विवाह करने के हेतु किसी लड़की की खोज में निकल पड़े तो क्या यह अनुचित है ? बुरे लोगों के मन में ही बुरी भावना रहती है और वे दूसरोंकी उन्नति को देखकर रात-दिन जलते रहते हैं । पढ़े-लिखे तथा अच्छे विचारवान् व्यक्तियों के पक्ष में ऐसी बात नहीं होती । वे तो और भी मदद के लिये तैयार हो जाते हैं । उनकी तो बात ही निराली होती है । बुरे लोग अपने दिल में चाहे जो कुछ भी सोचें इसकी चिंता आपको बिल्कुल न करनी चाहिये । ऐसा

तो कभी नहीं हो सकता कि सभी व्यक्तियों के विचार एक हों और सभी आपकी बातों को मानने के लिये हर घड़ी तैयार हों। हाँ! कुछ मान सकते हैं और कुछ नहीं। इसलिये पिताजी! आप व्यग्र न हो उठें। यह तो संसार में चली हुई रीति है कि सभी अपनी इच्छाओं के अनुकूल अपने कार्यों को पूरा करने के लिये कर्म-भूमि में उद्यत होते हुए दीखते हैं। हाँ! भले बुरे का ज्ञान रखकर ही कोई भी कार्य आरम्भ किया जाता है। मैं भी यही चाहता हूँ कि आप मुझे स्वतन्त्रता दें, जिससे मुझे अपने भाग्य को आजमाने का मौका मिले। आजादी चाहता हूँ इसलिये नहीं कि मैं अपने-आप को भूल बैठूँ और अपने किये पर जन्म भर पछुताता रहूँ। अतः मैं किस प्रकार का कार्य करके आपको दिखला सकता हूँ, यह तो उसी समय आप स्वयं जान ही जायेंगे। उस समय आप देखियेगा कि मैं घर की स्थिति को सँभाल कर उसे अपने काबू में ला सकता हूँ या नहीं। आपको और कुछ नहीं करना है, 'सर्फ' इतना ही करना है कि आप मेरी एक छोटी-सी प्रार्थना को स्वीकार कर लें। मेरा जहाँ तक खयाल है मैंने आपका अहित सोचकर ऐसा कहने का साहस नहीं किया है। अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति भले ही हो अथवा नहीं, पर किसी भी इच्छा को दबाने रखना भी तो उचित नहीं होता है। यही कारण है कि मैंने आज इस बात का वर्णन आपके सामने खुलासा कर दिया है। आप चाहे मानें या न मानें पर पीछे आप यह नहीं कह पाइयेगा कि मैंने विवाह के सम्बन्ध में आपसे कुछ भी नहीं कहा था। आखिर जो होना होता है वह तो हो करके ही रहता है। इसलिये मेरी यही धारणा है कि आप मेरी बातों को अच्छी तरह सोच-विचार कर मुझे उचित राय दें। आपसे तो सिर्फ इजाजत लेनी है विवाह करना या न करना तो मेरे ऊपर ही निर्भर है। यह तो कभी संभव नहीं कि बिना सोचे-विचारे आप भी किसी कार्य के करने में तत्पर हों। इसलिये मैंने भी खूब सोच-विचार कर आपको कहा है और जो कुछ भी मैंने कहा वह मेरे खयाल से बिल्कुल सही जँचता है।

आप जो उचित समझें करें, मुझे इसके लिए कोई भी एतराज नहीं ।”

ठा० — “उमेश ! जब इस तरह की बात सामने आती है तो कुछ भी करते नहीं बनता । इस सम्बन्ध में कई व्यक्ति मेरे पास आते हैं और मैं आज तक किसी तरह टालता ही रहा । अब जो भी मेरे पास आवे उसे यही जवाब दूँगा कि बिना तुम्हारे मैं कुछ भी नहीं कह सकता । अच्छा, तो तुम एक काम करो । लड़की की तलाश कर लो और इसकी सूचना मुझे फौरन दे दो । तब जैसा उचित होगा किया जायगा ।”

उ० — “पिताजी ! मैं जब कन्या खोजूँगा तो पढ़ी-लिखी हुई और व्यावहारिक बातों को अच्छी तरह समझनेवाली । यदि ऐसी मिल भी गई तब तो सोचने और विचारने की कोई बात ही नहीं रह जाती । सिर्फ सम्बन्ध जोड़ना ही बाकी रह जाता है । साथ-साथ मैं इस बात का पूरा ख्याल रखूँगा कि लड़की के पीछे पड़कर कहीं मुझे आजन्म पछताना न पड़े ।”

ठा० — “इस विषय में तुम्हें मुझसे सलाह लेने में हर्ज ही क्या है ?”

उ० — “हर्ज तो कुछ नहीं है, पिताजी ! मुझे सिर्फ इतना ही डर है कि कहीं आप इसे अस्वीकार न कर दें ।”

ठा० — “यदि मैं ना-मंजूर भी करूँगा तो तुम्हारी भलाई सोच कर ही न ?”

उ० — “पिताजी ! मैं तो सर्वप्रथम अपनी भलाई सोचकर ही विवाह करूँगा । उसके पश्चात् यह देखूँगा कि मेरी स्त्री के कारण किसी का दिल तो नहीं दुःखता है । यदि बात ऐसी है तो मैं अपनी स्त्री के उन दुर्गुणों को निकाल बाहर करने का प्रयत्न करूँगा जिससे किसी और व्यक्ति को कोई हानि न होने पावे । फिर यह कैसे हो सकता है कि जिस वस्तु को मैं पसन्द करूँ उसे प्राप्त करने में सर्वथा असफल रहूँ । जिसे मैं अपना दिल एक बार दे दूँगा उसे पुनः वापस लेने में मैं अपना मुँह किसीको दिखला सकता हूँ ? यदि मैं अपना दिल देकर उसके अनुकूल कार्य करने में वंचित रहा तो मुझे हर समय इस बात की चिंता बनी रहेगी और किसी भी कार्य के

करने में मेरा दिल बिल्कुल नहीं लगेगा ।”

ठा०—“मैंने लड़की की खोज के लिये तुम्हें तो अधिकार दे ही दिया । अब तुम मुझसे सलाह लेना भी बुरा समझते हो न ?”

उ०—“मैं बुरा नहीं समझता, पिताजी ! अब मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि जिस लड़की को मैं पसन्द करूँ उसे छोड़ किसी और लड़की की ओर आँखें उठाकर भी न देखूँ, शादी करना तो दूर की बात है ।”

ठा०—“अच्छा, तो यह भी सही । पर मुझे खबर तक भी न दोगे क्या ?”

उ०—“अवश्य दूँगा । आप इसकी फिक्र न करें ।”

ठा०—“तो जाओ और अपनी माँ को मनाओ । उसके मिजाज को ठिकाने में लाना मेरी शक्ति के बाहर की बात है । इस कार्य को तो तुम्हीं कर सकते हो । जिस तरह से हो उसे समझाओ बुझाओ और उसके स्वभाव में कुछ परिवर्तन कर देने की चेष्टा करो ।”

ठकु०—“अब बाबू साहब कुछ होश में आये । अभी तक तो स्वप्न में ही विचरते रहे । अपने राम को कौन कहे, चले थे दूसरे को शिक्षा देने । आखिर मेरी बात को मानना ही पड़ा । इतना भी न करते तो खाया कैसे पचता !”

ठा०—“देखा न उमेश ! जितना भी किया जाय दोषी तो बनना ही पड़ता है । खैर तुम दोनों जाओ और मुझे अपना कार्य करने दो ।”

सात

अब दोनों माँ और बेटे ने ठाकुर साहब का कमरा छोड़ दिया । उमेश अपने कमरे की ओर गया । उस समय उसका चेहरा खुशी से खिल रहा

था और वह बहुत प्रसन्न होते हुए दिखाई देता था। उसने मन ही मन ईश्वर को सैकड़ों बार धन्यवाद दिया। अपने कार्य का भार अपने ही ऊपर देखकर उसे बड़ा हर्ष भी हुआ। उसने अन्त समय तक विवाह के कार्य को पूरा करके ही छोड़ने का प्रण किया। वह चाहता तो कल ही लता को अपने घर में ले आ सकता था, पर उसने ऐसा करना उचित न ठाना। उसे अब पूर्ण विश्वास हो गया कि लता तो अब उसकी हो गई है और अब किसी दूसरे की नहीं हो सकती। जब लता उसके घर में आयेगी तो वह अपने को भाग्यशाली समझेगा और लता को किसी भी वस्तु को कमी नहीं रहने देगा।

उमेश इन्हीं बातों में विचारमग्न था। उसी समय उसकी माँ भी उसके कमरे में आ गई। अब उमेश से न रह गया और लता के फोटो को कोट के खरीता में से बाहर निकाल लिया और माँ को दिखलाते हुए कहा—“देखो माँ! यह फोटो तुम्हें पसन्द है या नहीं? यदि मैं चाहता तो इस फोटो को और भी साफ बनाता। इस चित्र को तो मैंने दूर से ही लिया है और इसीलिये यह उतना साफ नहीं दिखाई पड़ता। यदि तुम इस लड़की के सामने पड़ती तो जान जाती कि उसका स्वभाव किस ढंग का है। वह इतनी कोमलता से बातें करती है कि उसके सामने से हटने को जी नहीं चाहता। वह अभी पढ़ ही रही है और समझ लो कि एक ऊँचे दर्जे में पढ़ती है। उसकी माँ बहुत निर्धन है और किसी तरह अपनी लड़की को पढ़ाकर उसे किसी अच्छे घर में शादी कर देना चाहती है। भाग्यवश उस लड़की से मेरा परिचय हो ही गया। उसकी बातों से मैंने यह ज्ञान लिया कि वह मेरे सिवाय किसी और व्यक्ति को अपना पति न चुनेगी। वह भी बहुत दिनों से या समझे महीनों से एक ऐसे व्यक्ति की तलाश में थी कि जिसके साथ रहकर वह भविष्य को चैन से काटे। बहुत सोच-विचार के बाद वह इस नतीजे पर उतर आई कि वह मुझे ही चाहती है और जिन्दगी भर मुझसे अलग होना उसे जैसे पसन्द ही नहीं। तुम यह

मत समझो कि मैं उसके घर जाया करता था। उसके घर में तो मैंने आज तक अपना पैर भी न रखा। हाँ, मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि उसका घर किस जगह पर स्थित है। उसकी बात से ही पता चलता है कि वह भले घर की लड़की है और किसी समय उसके पिता एक प्रतिष्ठित व्यक्ति रहे होंगे। मेरा जहाँ तक ख्याल है, गरीबों का दिल बहुत बड़ा होता है। धनी लोग अदृक्कार में पड़कर अपनी शान के आगे किसी को कुछ भी नहीं समझा करते। इसीलिये उनका मिजाज बहुत संकीर्ण होता है। गरीबों की यह बात नहीं होती। वे अपना दिल देकर तथा विश्वास जमाकर ही दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। वे किसी और वस्तु द्वारा अपने व्यक्तित्व का परिचय नहीं देते। धनी लोग तो धन का लोभ दिवा कर दूसरों को अपनी ओर मिला लेते हैं और जैसा कार्य चाहें उनसे करवा लेते हैं। तुम यह अनुमान लगा सकती हो कि वह किस तरह की होगी और उसका विचार कैसा होगा। मैं यह जोर देकर कहता हूँ कि यदि मैं उससे शादी कर लूँ तो मेरा जीवन सफल हो और साथ-साथ वह भी अपने को भाग्यवती समझ ले। मैं और लोगों की तरह घर के झमेले में नहीं पड़ना चाहता, बल्कि उससे कहीं दूर रहना चाहता हूँ। मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरी स्त्री मेरी बात का कुछ भी ख्याल न करे। इसके लिये मुझे यह देखना है कि मेरी स्त्री के चरित्र में कोई दोष न हो। यदि हो भी तो उसे मिटाने का मैं भरसक प्रयत्न करूँगा। मैं तो घर में शांति रखना चाहता हूँ और घर की सारी व्यवस्थाओं को ठीक रखना चाहता हूँ। यदि स्त्री घर को बिगाड़ना चाहती है तो उसे पहले तो अच्छी तरह समझाऊँगा और यदि न मानी तो समझ लो कि उस समय मैं उसका पति नहीं, बल्कि शत्रु बन जाऊँगा। उसके पीछे लग कर मैं ऐसा कार्य कभी नहीं कर सकता जिससे पिता को तथा तुमको दुःख हो। ऐसी और भी बातें मैं उस समय करना चाहता हूँ जिसको कह डालना अभी उचित नहीं समझता। एक बात अवश्य है कि कहने में तो बात सरल मालूम पड़ती है, पर उसी बात के अन्वय

चलने में बड़ा कठिन पड़ता है। इस प्रकार अब मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने खूब सोच-विचार कर लता को अपनी जीवन-संगिनी बनाने के लिये वचन भी दे दिया है। मेरा जहाँ तक खयाल है, मैंने इस कार्य में भूल नहीं किया है। लता भी मेरे शिष्य और किसी दूसरे व्यक्ति को अपना पति नहीं बनाना चाहती। यदि मैं उसे शादी नहीं करता हूँ तो मैं महापातको संभोगा जाऊँगा और लता भी आजन्म कुंवारी ही रहेगी। मैं अपने वचन का पालन करने में हमेशा सतर्क रहता हूँ और जब मैं एक बार कोई बात कह देता हूँ तो अन्त समय तक उसे निभाने का प्रयत्न करता हूँ। लता चाहे जो हो, मैं उसको चाहता हूँ और उसी से शादी करना मेरा धर्म भी है। मैं अपनी जिन्दगी भर लता को छोड़कर किसी और लड़की को अपना दिल नहीं दे सकता। हाँ! यदि लता इस संसार से न्यायी हो गई, तब तो बात दूसरी है। उस समय मुझे परिस्थिति के अनुकूल अपने विचार में थोड़ा सा परिवर्तन अवश्य ही करना होगा। इसीलिये मेरा यही विचार है कि तुम भी मुझे इस कार्य में दखल मत दो, बल्कि सहर्ष इस कार्य को शीघ्र ही पूरा करने की अनुमति दो।”

अपने पुत्र के मुँह से ऐसी अजीब बातें सुनकर ठकुराइन को भी बड़ा विस्मय हुआ। वह अपने मन ही मन सोचने लगी कि जमाना कुछ उल्टा ही हो गया है। किसके घर में ऐसा पुत्र होगा जो अपनी शादी करने के लिये माँ-बाप से राय न माँगता हो। वह बड़े अचम्भे में आकर बोल उठी “वेद्य! जब तुमने लड़की की खोज भी कर ली तो फिर उसे घर लाने में देर क्यों की?” उमेश बोला—“माँ! तो मैं पागल थोड़े ही हो गया हूँ कि तुमसे कुछ पूछे ही किसी लड़की को घर में ले आऊँ? तुम भी अजीब बातें करती हो। यदि ऐसा होता तो सब लोग मनचाहा कार्य करते और अपने पसन्द की लड़की को घर में ले आते। तब तो विवाह करना तथा खर्च करने का कार्य भी बन्द हो जाता। माँ-बाप के खर्च भी बच जाते और मुफ्त में काम भी चल जाता।” ठकुराइन झुंझलाती हुई बोली—“लड़की

तलाश करने के लिये तो तुमने किसी से कुछ पूछा तक नहीं और अब मुझसे सलाह लेने चले हो। जैसा मन आवे वैसा करो। पुत्र पिता की तरह न हो तब तो बड़े आश्चर्य की बात है।”

माँ से ऐसी बातें सुनकर उमेश सन्न-सा रह गया। वह समझ ही नहीं पाता था कि अब वह क्या करे। एक ओर तो उसे पिता की बात स्मरण हो आती थी और दूसरी ओर माँ की। वह जैसे अपने आपको ही भूल बैठा। उसे डर था कि यदि वह पिता की बात मानता है तो शायद माँ रुष्ट हो जाती है। यह भी संभव था कि माँ का कहना मानने पर पिता उसे घर से बाहर निकालने को तैनात हो जाते। अब वह बड़े असमंजस में पड़ गया और इसी सोच में पड़कर उसने बहुत देर तक अपनी आँखें मूंद ली। एकाएक उसके मन में यह ख्याल पैदा हो गया कि वह परीक्षा समाप्त होते ही लता को अपना साथ न छोड़ेगा और अपने घर तक उसे साथ ले आयेगा। उसके बाद जो होगा देखा जायगा। फिर उसके दिल में यह बात आ गई कि वह इस बात की सूचना भी घर पर पहले ही भेज देगा। वह साफ-साफ घरवालों को लिख भेजेगा कि उसने शादी कर ली है और वह बहू को कुछ दिनों बाद घर ले जा रहा है। यदि घर से बुलाहट आयेगी तो वह घर जायगा यदि नहीं तो वह घर जाने तक को तैयार नहीं है। उसे पूर्ण विश्वास था कि वह कहीं भी जाकर अपना पेट पाल सकता है। घर वाले उसे नासमझ या बेवकूफ भले ही समझें, वह ऐसे घर में अपना घेर रखना भी पसन्द नहीं करता। वह जहाँ जायगा लता को अपने साथ लिवा ले जायगा और वह कभी उसका साथ न छोड़ेगा। इन्हीं बातों को सोचकर उमेश कुछ देर के लिये ‘कि कर्त्तव्य विमूढ़’ हो गया और कुछ समय तक कुछ सोच भी न सका।

ठकुराइन भी उमेश के कमरे में से निकल कर अपने कार्य में लग गई थी। उस समय तक उमेश कमरे के अन्दर ही था और विचार में वल्लीन था। ठकुराइन के दिल में यह ख्याल पैदा हो गया कि वह कभी

अभाग्यवती है। उसकी बात तो कोई जैसे सुनता ही नहीं है। वह बेचारी अकेली करे क्या ? घर के सभी धंधे तो उसे ही करने पड़ते हैं और तिस पर भी खरी-बोयी उसे ही सुनाई जाती है। मर-मर कर काम भी करना और दूसरों के आधीन रहकर अपने अधिकारों को भी खो बैठना तो न्यायोचित नहीं जान पड़ता। ठकुराइन अपने आप कहती है कि मेरे स्थान पर यदि कोई दूसरी औरत रहती तो वह कदापि ऐसे घर में नहीं रह सकती। ईश्वर की कृपा से एक पुत्र हुआ तो वह भी कैसा कि माँ की आज्ञा का मो पावन न करने वाला। ईश्वर भी अजीब लीला दिखाता है। उमेश की शादी होने के पश्चात् उसने श्री सत्यनारायण की पूजा करने का भी निश्चय की थी। अब देखती है कि उसकी आशाएँ भूल में मिल रही हैं। कहाँ उसकी इतनी बड़ी इच्छा और कहाँ उसके पुत्र का ऐसा व्यवहार ! हो न हो उमेश अपनी प्रेमिका लता के प्रेम में ओत प्रोत होकर ऐसी बातें करता है कि जैसे उसके माँ-बाप हैं ही नहीं। आजकल तो ऐसी हवा ही बह गई है कि जिस किसी भी सुन्दरी लड़की को देखा कि लगे अपने आपको भूलने। पढ़-लिखे लोगों में तो यह प्रथा और भी अधिक चली हुई है। न जानें औरत में ऐसे कौन से गुण होते हैं जिससे आजकल के छोकड़ों को कल नहीं पड़ती। उन्हें अपने कार्य करने में मन ही नहीं लगता और स्त्री के पीछे दिन भर भटकते रहते हैं। यही हवा उमेश को भी लगती दिखाई देती है। उससे छुटकारा पाना उसके लिये कठिन हो गया है। अब वह किसी तरह भी मानने को मजबूर नहीं दीखता। यदि उसे स्वतन्त्रता न दी जाय तो हो सकता है कि वह घर में तहलका मचा दे। अच्छा है कि उसके इस कार्य में कोई भी हस्तक्षेप न करे। अगर कोई दखल भी देता है तो शायद वह सदैव के लिए घर से बाहर निकल पड़े और आजन्म घर लौटकर न आवे। नई सभ्यता में रंगे हुए छोकड़ों की दुनिया भी न्यार होती है। उनके कार्य का कोई भी पार नहीं पा सकता। उनकी बातों से ही मालूम होता है कि वे किसी भी बात में किसी से कम नहीं हैं। यदि

उनके किये कार्यों में काई छेड़-छाड़ कर भी देता है तो ऐसे व्यक्ति को हमेशा उनसे नम्र होकर ही चलना पड़ता है। ठीक यही दशा उमेश की भी है। उसके विचार अब पहले के सामान नहीं रह गये हैं। अध्ययन करने से तो अच्छे ज्ञान की प्राप्ति होती है, पर न जाने ऐसा क्यों नहीं हुआ करता। नये जमाने के लड़के इस बात को उलट देते हैं और जैसा मन में आया उसीको उचित समझ कर उसके अनुसार चलते हैं। इन्हीं बातों को सोच कर ठकुराइन चिंता-सागर में डूबती जा रही थी और वह समझ ही नहीं पा रही थी कि स्थिति किस प्रकार काबू में लायी जाय। उसे सबसे अच्छा उपाय यही दीख पड़ा कि वह उमेश के कार्य में विघ्न न डाले। यदि ऐसा करती है तो वह नव-वधू को भी नहीं देख पाती और जीवन पर्यन्त उसे रोने के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं लग पाता। अतः उसने अपने दिल में अटल विश्वास जमा ली कि वह अपने पुत्र के काम में किसी भी तरह बाधा न पहुँचायेगी।

ठाकुर, ठकुराइन और उमेश अपने अलग-अलग कमरे में बैठे हुए थे और तीनों उमेश की शादी के सम्बन्ध में गम्भीर-चिंतन कर रहे थे। तीनों में से किसी को भी किसी दूसरे कार्य के करने में दिल नहीं लगता था। घर में भी चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था और ऐसा मालूम पड़ता था मानों सभी चीजें उन्हें दुःखदायी प्रतीत होती हों। तीनों के अपने-अपने अलग विचार थे। ठाकुर महोदय चाहते थे कि उनके विचारानुकूल उमेश की शादी हो तो सबके लिये अच्छा है। ठकुराइन सोचती थी कि उमेश का विवाह शीघ्र ही हो जाय, पर उमेश के कथनानुसार नहीं, बल्कि एक भले घर की लड़की से ही। वह पतोहू पर अपना अधिकार जतलाकर अपने को घर की एक बड़ी मालिकिन कहलाना चाहती थी। अब उमेश का विचार यह था कि वह लता के सिवाय और किसी दूसरी औरत को न तो अपनी स्त्री ही बनायेगा और न किसी को अपना दिल ही देगा। वह जब भी शादी करेगा तो किसी भी अन्य बालिका से नहीं, बल्कि लता से ही।

इस प्रकार तीनों विचारमग्न थे और एक का विचार दूसरे से न मिलता था। इस समय तीनों के तीनों शोकाकुल थे और परिस्थिति को सँभालने के लिये वे अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अपने विचारों से ही तर्क-वितर्क कर रहे थे।

किसी तरह रात का खाना भी तैयार हो गया और एक नौकर आकर ठाकुर साहब तथा उमेश को इसकी खबर दे दी। दोनों बाप बेटे अपने-अपने कमरे से निकले और रसोई घर में चले गये। बाप-बेटे की ओर देखकर तथा बेटा बाप की आकृति को ताड़कर दोनों स्तब्ध रह गये। दोनों में से कोई भी समझ नहीं पाता था कि किस विषय में चर्चा चलायी जाय। आखिर कुछ देर के बाद ठाकुर साहब बोल उठे—“बेटा उमेश ! तुम तो पहले के खर्च से ही परीक्षा तक अपना काम चला सकते हो न ?” उमेश ने जवाब दिया—“नहीं पिताजी ! अब खर्च रह ही कहाँ गया है ? शहर में तो हर वस्तु के लिए पैसा ही लगाना पड़ता है। यदि दो या तीन लड़के एक ही साथ रहकर पढ़ना चाहें तो खर्च में बहुत कुछ सुभीता मिलता है। मैं तो अकेला हूँ और मामूली से मामूली काम में भी मुझे पैसे ही लगाने पड़ते हैं। इसीलिये तो कहा जाता है कि पढ़ाई में धन कालोभ नहीं देखा जाता। रुपये-पैसे को तो पानी की तरह बहाने से ही विद्या की प्राप्ति होना कुछ अंश तक सत्य है। इस बात को समझते हुए भी मैं फालतू कामों में खर्च नहीं करता। हाँ ! मैं जीवन-रत्नक आवश्यकता में खर्च अवश्य करता हूँ और वह खर्च मेरा बेकार नहीं जाता। इसलिये मैं कल तड़के ही जा रहा हूँ और आप मुझे दो महीने का खर्च दे दें तो काम चला सकूँ।” उमेश की बातें सुनकर ठाकुर साहब बोले—“अच्छा, तो मैं अब कहूँ ? क्या खाने-पीने के पश्चात् मेरे पास आकर खर्च जो चाहिये लेते जाना। अब तो शायद परीक्षा समाप्त होने पर ही आवेगा न ?” उमेश ने उत्तर दिया—“हाँ बाबूजी ! उमीद तो यही रखता हूँ।” ठाकुर साहब बोले—“तो तुम लड़की का भी पता लगाते आना। इसके बीच जो भी मेरे पास आवे मैं साफ कह दूँगा कि तुम्हारे आने से ही बात निश्चय हो

पायेगी, अन्यथा नहीं ।” उमेश बोला—“हाँ पिताजी ! मेरा भी यही विचार है ।”

खाना खाकर दोनों बाप-बेटे अपने-अपने कमरे में गये । उमेश को लता की बात फिर याद आ गई ! वह मन ही मन कहने लगा कि कल वह लता से मिलकर घर की सारी बातों को सुनायेगा । लता उस समय बहुत खुश होगी और उसके साथ घर आने के लिये अपनी उम्मुक्तता प्रकट करेगी । घर पहुँचना ही उसका अहोभाग्य है, फिर तो व्यावहारिक बातों को समझने में उसे देर न लगेगी । उमेश इन्हीं बातों को सोच ही रहा था कि इतने में ही ठकुराइन ने उसके कमरे में प्रवेश की । वह उग्र स्वास लेती हुई बड़े दुःख के साथ बोल उठी—“बेटा उमेश ! तुम मुझे अकेले छोड़ कर कल जा ही रहे हो । ऐसा न समझना कि तुम्हें घर का कुछ फ़िक्र ही नहीं है । पिता के बाद घर के मालिक तुम होगे । अब तो तुम्हें ही घर-व्यवहार चलाकर रहना पड़ेगा । तुम स्वयं देख ही रहे हो कि घर के सारे काम मुझे ही करने पड़ते हैं । यदि वहाँ मेरे साथ रहती तो उससे कुछ न कुछ मदद अवश्य ही मिल जाती । मुझे आशा है कि तुम मेरी इस कमी को शीघ्रातिशीघ्र पूरा करके ही छोड़ोगे । मैं रात-दिन यही सोचा करती हूँ कि कब घर में वहाँ आवे और मुझे कुछ आराम मिले ।” माँ के मुँह से इतनी बातें सुनकर उमेश ने उत्तर दिया—“माँ ! यदि तुम चिंता न करो तो तुम्हारी इस कमी को मैं शीघ्र ही पूरा करूँगा । मैं यह भी कहे देता हूँ कि मेरी शादी के लिये तुम्हें कुछ भी खर्च न करना पड़ेगा । मेरा विवाह एक अजीब ढंग से होगा । वह यह कि मैं चुपचाप वहाँ को घर में ले आऊँगा तुम इसे बुरा न मानना । तुम यह भी न सोचना कि मैं किसी दुष्टा स्त्री के फंदे में पड़कर ऐसा कर रहा हूँ । मैंने लता को अच्छी तरह पहचान लिया है और उसके गुणों की परीक्षा भी मैंने अच्छी तरह कर ली है । मेरी समझ से तो वह पतिव्रता स्त्री होगी और मेरी हर बात को पूरा करने के लिये वह सदा तैयार रहेगी । मैं यह भी नहीं कह सकता कि मेरा परिचय लता से किस

प्रकार हो गया। इसके लिये मैं ईश्वर को सैकड़ों धन्यवाद देता हूँ कि उसने मेरे इस कार्य में बड़ी मदद पहुँचाई। इसलिये यह मेरी प्रार्थना समझ लो कि तुम पतोहू से जिननी आशाएँ रखती हो वे सब पूरी हो जायँगी, पर कार्य तुम्हें सिर्फ एक ही करना होगा और वह यह है कि तुम मेरी शादी के सम्बन्ध में कुछ भी विघ्न न डालो।” तन्त्रण ठकुराइन बोल उठी—“बेटा ! वह विवाह ही कैसा जिसमें कुछ खर्च न लगाये जायँ। एक गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपनी औकात के अनुसार शादी में खर्च करता है। तुम्हें तो अपने पड़ोसियों, रिश्तेदारों और मित्रों को बुलाकर बड़े शान-शौक से विवाह करना चाहिये। विवाह ही एक ऐसा कर्म है जिसमें सबसे अधिक खर्च लगाये जाते हैं। यदि तुम किसी से कुछ पूछे बिना ही बहू को चुपचाप घर में ले आते हो तो तुम्हें लोग अच्छा नहीं समझेंगे। समाज में रहने से विचारों को भी उच्च स्थान देना पड़ता है। इसी डर से तो मैं किसी के घर नहीं जाया करती, बल्कि पड़ोस की औरतें ही मुझसे मिलने आती हैं। दूसरी बात यह भी है कि तुम्हारे बाबूजी से मेरे साथ अनबन होने का कोई कारण भी हो। मैं तो घर में शांति बनाये रखना चाहती हूँ, पर मुझे मालूम ही नहीं होता कि मैं अशांति को किस प्रकार दूर भगाऊँ। या तो तुम्हारे पिता में ही अवगुण है या मुझमें ही। मैंने तो उनसे कोई ऐसी बात कही नहीं है कि वे मुझसे रुष्ट हो जायँ। इस बात का निर्णय तो तुम भी कर सकती हो ! इसलिये मेरा आन्तरिक विचार यही है कि तुम लड़की की खोज अवश्य कर लो, पर इस बात की सूचना भी घर में दे दो। तब तुम्हीं देखोगे कि तुम्हारा विवाह किस ढंग से होगा और मुझे लोग किन शब्दों का उच्चारण करके आशीर्वाद देंगे।”

माँ की बात सुन लेने के पश्चात् उमेश कुछ देर विचार-मग्न दिखाई दिया। उसके बाद वह पुनः बोल उठा—“माँ ! लड़की को खोजना अब रह ही कहाँ गया ? वह तो खोजी हुई है और मेरी जब भी इच्छा हो मैं जहाँ भी उसे ले जा सकता हूँ। वह तो मेरी अपनी धरोहर की वस्तु है और

मैं जब चाहूँ उसे अपने अधिकार में ला सकता हूँ। सिर्फ समय की देर समझो। परीक्षा के समाप्त होते ही मैं उसे यहाँ लेते आऊँगा। लोग मुझे भला या बुरा जो कुछ समझें मैं इसकी चिंता बिल्कुल नहीं करता। मैं उसी समय उनको उचित जवाब देकर उनके मुँह में ताली लगा सकता हूँ। इतना कार्य करने के लिये मुझे किसी से कोई भी सलाह लेने की आवश्यकता नहीं। उसी समय उन्हें भले-बुरे का ज्ञान हो जायगा। वे मुझे क्या बतावेंगे ? उन्हें तो अपने ऐसा मुँह लेकर चुप रह जाना पड़ेगा।” बेटे के मुँह से ऐसी बातें सुनकर ठकुराइन तिलमिला उठी और बोली—उमेश ! तुम पढ़-लिख तो गये पर बात करते हो एक मूर्ख व्यक्ति की तरह। इससे अच्छा है कि तुम अब आगे पढ़ने की चेष्टा न करो। ऐसा न हो जाये तो पानी की तरह बहाये जायँ पर काम कुछ न आवे। एक मामूली औरत के पीछे जब तुम अपना सर्वस्व तक लुटा देने को तैयार हो तो तुम्हें और कहा ही क्या जाय ? अरे ! मर्द को औरत की भी कोई कमी है ? औरतें तो दूसरों के मन के भाव तुरन्त ताड़ जाती हैं। लोगों को यह मालूम ही नहीं होता कि प्रेम के पीछे तलवार छिपी हुई रहती है, जो समय पड़ने पर अपनी करामत दिखाने में बाज नहीं आती। तुम इन बातों को क्या जानो ? तुमने देखा कि औरतें बड़ी मीठी बातें करती हैं, बसू लग गये अपने आप तक को भूलने। जब तुम बड़े होगे तभी इन बातों को जान सकोगे। इसलिये मैं तुम्हें उचित राय देती हूँ और वह यह है कि तुम किसी भी स्त्री के चंगुल में कभी मत फँसो।” उमेश ने माँ की बात का उत्तर देते हुए कहा—“माँ ! तुम इस बात की चिंता मत किया करो। तुम मुझे ऐसा कभी मत समझो कि मैं किसी की चिकनी-चुपड़ी बातों को सुननेवाला जीव हूँ। तुम सिर्फ इतना ही देख लो कि मैं क्या करने जा रहा हूँ। मैं जो भी कार्य करूँगा सबों के हित का ख्याल रख कर उस कार्य के करने में अग्रसर होऊँगा। तुम यह कभी मत सोचो कि तुम्हारा लड़का विनाश के पथ पर जा रहा है। मैं कोई पाँच वर्ष का बालक नहीं हूँ कि इतना न

समझ सकूँ। इसलिये माँ ! तुम कुछ मत बोला करो। लोगों की परवाह तक तुम न किया करो।” माँ बोली—“खैर, मैं अब इससे अधिक कर ही क्या सकती हूँ। तुम पर डंडे बरसा कर तो काम नहीं चल सकता। मैं जितना कह सकती थी सब कह डाली हूँ अब सिर्फ भले-बुरे का ज्ञान तुम्हीं को सोचना है। कहीं ऐसा न करना कि जिससे मेरे मुँह में कालिख लग जाय। इसलिये मैं यही परामर्श देती हूँ कि तुम ठीक रास्ते पर चलो तो तुम्हारा सर्वथा कल्याण है।”

आठ

माँ और बेटे में बहुत देर तक तर्क-वितर्क होने के पश्चात् ठकुराइन कमरे से निकल कर बाहर चली गई। उमेश फिर विचार-मग्न होते दिखाई दिया। अब लालटेन के प्रकाश को कुछ धीमा करके वह लेट रहा। वह इस विचार में तल्लीन रहने लगा कि लता को घर में लाना है या नहीं। एक किस्म से तो लता उमेश की जीवन-संगिनी हो सकती थी, पर जाति के ख्याल से नहीं। इसका कारण यह था कि लता कायस्थ की पुत्री थी और उमेश ब्राह्मण का लड़का था। मर्द तो अपनी इच्छानुकूल अपने से छोटी जाति की लड़की से वैवाहिक-सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। उमेश और लता में जाति का ही बड़ा भारी अन्तर था। उमेश को भी डर था कि लड़की की जाति मालूम हो जाने पर घरवाले उसे घर से बाहर निकालने में बाज न आयें। यदि सब लोग इस बात को जान जाते हैं तो उमेश उतना लोकप्रिय नहीं रह जाता। इस प्रकार उमेश यह निर्णय ही नहीं कर सका कि अब वह क्या करे। एक ओर तो बिरादरी की समस्या थी और दूसरी ओर लता का निस्स्वार्थ प्रेम का रास्ता था। उमेश यदि एक ही पथ को ग्रहण कर लेता है तो दूसरे पथ पर वह चल नहीं सकता। यदि वह जाति देखने

की ओर लग जाता है तो उसे लता को सदैव के लिये त्याग देना पड़ेगा । क्योंकि समाज का यह नियम नहीं है कि कोई भी व्यक्ति जिसको इच्छा हो उसे घर में लाकर अर्धांगिनी का रूप दे दे । तिस पर भी उमेश जैसे एक प्रतिष्ठित ऐश्वर्यवान् व्यक्ति के लिये यह कभी संभव नहीं । दूसरी ओर उमेश लता को छोड़ भी तो नहीं सकता था । जब उसने लता को आजन्म अपने साथ रखने के लिये वचन भी दे दिया है तो अब वह अपनी प्रतिज्ञा में टल भी तो नहीं सकता था । यदि वचन न भी दिया हो तो उमेश लता को छोड़कर संसार की अन्य किसी भी बालिका से अपना वैवाहिक सम्बन्ध भी तो स्थापित नहीं कर सकता है । उमेश का तो लता से दिज का प्रेम था, पैसे का नहीं । फिर यह कैसे संभव हो सकता था कि उमेश लता के प्रेम को पैर से रौंद डाले । आखिर घर में कितना ही बड़ा उथल-पुथल क्यों न मच जाय उमेश हरगिज लता को नहीं छोड़ सकता । यदि उसे पैतृक सम्पत्ति से वंचित भी रहना पड़े तो यह भी उसे स्वीकार था, पर लता को अपने गले का हार बनाने के लिये वह और कुछ नहीं चाहता । यही थी दृढ़ प्रतिज्ञा उमेश की माँग और यही था उसका भागी कार्यक्रम !

यों तो ठाकुर महोदय कार्यशील और प्रतिष्ठित व्यक्ति अवश्य थे, साथ-साथ धर्म में भी उनका अटल विश्वास था । उनके आस-पास के गाँवों में जहाँ कहीं भी धर्म की चर्चा चलती ठाकुर साहब वहाँ अवश्य ही पहुँचे रहते । उनके आगमन के पश्चात् ही वहाँ का कार्य आरम्भ होता और ठाकुर साहब की आज्ञा से ही समाप्त भी किया जाता । इस प्रकार ठाकुर साहब ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो और कार्यों के अतिरिक्त धार्मिक मामलों में भी अपना हाथ बैठाते थे । इस प्रकार वे एक कट्टर सनातनी थे । उस समय वर्ण-व्यवस्था भी काफी प्रचलित थी और धार्मिक बातों का बोलबाला था । एक ओर जमींदारी का कार्य सँभालना और दूसरी ओर धर्म में अटल विश्वास रखना ही उनका मुख्य ध्येय था । वे इस बात को कभी पसन्द ही नहीं कर सकते कि उनका इकलौता पुत्र अपनी जाति-

बिरादरी में विवाह करना छोड़कर दूसरी जाति की लड़की से अपना वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करे। आप सनातन धर्म के पक्के अनुयायी होने के कारण अपने पुत्र को अपनी जाति के सिवाय दूसरी जाति की ओर लगाव होने देना नहीं चाहते थे। इतना होने पर भी समय के अनुकूल कार्य करना ही पड़ता है। अतः ठाकुर साहब भी कुछ न बोलकर सदैव की भाँति अपने कार्य में लग गये थे।

उमेश कुछ समझ ही न पाया कि किन साधनों से समस्या को हल किया जा सकता है। उसने अपने मन में पूरा विश्वास किया कि वह लता को तो उसे घर में ला करके ही छोड़ेगा। हो सकता है कि ऐसा करने पर उसके पिताजी उसे घर से निकाल बाहर करें। इस बात को अभी से ही सोच रखना उचित है। यदि निकाल भी दें तो वह सोचे हुए उपायों द्वारा आनन्द से जीवन यापन कर सकता है। इसमें उसे कोई शक नहीं। उसने पुनः अपने मन में ठान लिया कि आखिर जो होगा देखा जायगा। अभी तो इस बात के ठिकाने लगाने में कुछ देर भी है। इस समय काफी रात हो गई थी और अब उमेश सोने के लिये बिछौने पर लेट गया। उसने सोचा कि कल सवेरे ही वह पिताजी से खर्च लेकर अपने काम के लिये रवाना हो जायगा। इतना सोचते हुए वह रात भर के लिये अपने को भूल सा गया।

दूसरे दिन तड़के ही उमेश जाग उठा। वह सवेरे के कार्यों से छुटकारा पाकर पिताजी के कमरे की ओर चल दिया। ठकुराइन उस समय तक जाग गई थी और घर के धन्धों में लग गई थी। इस समय उमेश पिताजी से मिला। वे भी अभी थोड़ी देर पहले उठकर बिछौने पर बैठे ही थे कि उमेश आ धमका। उमेश के जाने की तैयारी देखकर ठाकुर साहब बोले—बेटा उमेश ! तो क्या अब तुम जा रहे हो ?” उमेश ने जवाब दिया—“हाँ पिताजी ! अब सिर्फ जाने भर की देर है। आज्ञा हो तो चलूँ।” बक्से से रुपये निकाल कर उमेश के हाथ में थमाते हुए ठाकुर साहब बोले—“लो ये रुपये। अच्छी तरह खर्च चलाना। अपने स्वास्थ्य

का भी विशेष ख्याल रखा करना । साथ साथ मेरी बातों को भी न भूलना । खैर, तो जाओ और अपना कार्य देखो ।” ठाकुर साहब के इतना कह चुकने पर उमेश ने उनके पैरों को स्पर्श किया और वहाँ से अपने कमरे की ओर चल दिया । ठाकुराइन भी उमेश के कमरे में पहुँच गई और बोली—“बेटा ! दिल लगाकर अपना कार्य करते हुए आना । फिर तो तुम्हें यहीं रहना होगा । इसलिये भले बुरे का ज्ञान रखते हुए अपने कार्य की चिन्ता करना । इससे अधिक मैं और क्या कहूँ ?” उमेश ने उत्तर देते हुए कहा—“माँ ! तुम घबराओ नहीं । मैं जो कुछ भी करूँगा पहले उसे भली प्रकार सोच लूँगा तब कहीं आगे बढ़ूँगा । मेरी यही प्रार्थना है कि तुम पिताजी की बातों का पूरा ख्याल रखते हुए कार्य करना, जिससे उनका दिल न दुखने पावे । घर में शांति बनाये रखने से ही वह घर सुखी और सम्पन्न हो सकता है । समय भी तो अब थोड़ा ही रह गया है । देखते ही देखते बीत ही जायेंगे ।” पुनः ठाकुराइन बोली —“बेटा उमेश ! दुनियाँ में भले-बुरे सभी हुआ करते हैं । इसका पार पाना संभव नहीं । तुम मेरी सभी बातों को समझ ही गये हो । जैसा उचित हो सोचकर करोगे ही । अच्छा तो जाओ और अपने कार्य को सफल बनाते आओ ।” उमेश बोला—“हाँ, माँ । यह सब तुम्हारी कृपा है । ईश्वर जो कुछ भी करता है अच्छा ही करता है । तुम्हें चिन्ता क ने की कोई भी आवश्यकता नहीं ।” इतना कह चुकने पर उमेश अपनी माँ के पैरों पड़ा और चरण की धूली को माथे पर लगाते हुए बाहर निकला और साइकिल पर चढ़कर विश्व-विद्यालय की ओर चल दिया ।

उमेश चन्द घण्टों में ही विश्वविद्यालय दाखिल हो गया । उसने सभी वस्तुओं को यथा-स्थान रख दिया और कुछ देर आराम करने लगा । तत्पश्चात् वह खाना खा-पीकर पढ़ने के लिये चला गया । रास्ते में उसे सुधीर से भी मुलाकात हो गई । अब सुधीर से बोले बिना नहीं रहा गया । वह बोल ही उठा—“कहो भाई उमेश ! कैसे रहे ? उमेश बोला—“हा

भाई, सुधीर ! सब तुम्हारी कृपा है। अच्छे ही तो रहे। तुम अपना हाल तो बताओ।” सुधीर ने जवाब दिया—“अरे यार ! तुम भी अजीब आदमी हो। मेरी हालत जानकर ही क्या करोगे ? जरा अपने राम का भी कुछ खबर लिया करो।” उमेश ने कहा—“अपना खबर लेते लेते तो जान पर आकत आ गई। फिर क्या खबर लूँ ?” इतना कह चुकने पर दोनों मित्र विश्वविद्यालय के दरवाजे तक पहुँच गये और दोनों ने अपना अलग अलग रास्ता नापा।

अब उमेश अपनी सीट पर बैठ गया। वह लता से मिलकर बातों को विस्तारपूर्वक बताने में इतना उतावला हो रहा था कि पढ़ने जाने की भी उसकी इच्छा नहीं होती थी। उसे नहीं जाकर भी नहीं बनता था। खैर प्रोफेसर आकर लेक्चर देने लगे, पर उमेश स्तब्ध-सा सुनता ही रह गया। वह समझ ही नहीं पाया कि प्रोफेसर साहब किस विषय में व्याख्या दे रहे थे। इसका कारण तो पाठक से छिपा नहीं है। उमेश इतना विचार-मग्न था कि उस समय उसे कोई भी बात रोचक नहीं मालूम पड़ती थी। इसी प्रकार अपने-अपने घण्टे में प्रोफेसर आये और गये, पर उमेश की दशा ज्यों की त्यों ही बनी रही। वह इसी विचार में था कि कब छुट्टी मिले और लता से बातचीत करने का उसे सौभाग्य प्राप्त हो। एक मिनट उसे एक दिन ऐसा व्यतीत होता हुआ जान पड़ा। प्रोफेसर के लेक्चर देते समय बीच-बीच में वह बहुत अधीर उठता था और उसे लगता था कि वह क्यों न अभी कमरे से बाहर निकल जाय। ऐसा करना भी उसके लिए भुरी बात थी। बहुत देर की प्रतीक्षा के बाद किसी तरह उसका विषय समाप्त हुआ और वह कमरे से बाहर निकल आया। इस समय तो वह लता से मिल नहीं सकता था। अतः किसी तरह समय बिताने के बहाने वह किताबों को इधर-उधर उलटने लगा। वह कितनी देर तक ऐसा करता रहता। इस प्रकार स्नो तथा पाउंडर आदि के लगाने में भी उसने पूरा समय लगाया। फिर भी लता से मिलने का समय न हो पाया था। अब वह बैठा-बैठा

करता ही क्या ! कुछ देर तो उसने अखबार पढ़ने में ही बिता दिये । उसने सोचा कि इस तरह से काम नहीं चल सकता । उसे भट एक अच्छा उपाय सूझा । उसने मन में ठान लिया कि वह बाजार की सैर करते-करते ठीक समय में लता से मिल सकेगा । यही सोचकर वह कमरे से बाहर निकल ही पड़ा और बाजार की ओर चल दिया । जब उसने देखा कि अब मिलने का समय भी हो गया है, वह बगीचे की ओर चल पड़ा । दूर से ही उसने एक स्त्री को बगीचे में टहलती हुई दशा में पाया । अब वह ताड़ गया कि टहलने वाली औरत लता के सिवाय और दूसरी कोई नहीं है । अब उसके पैर भी जमीन पर नहीं पड़ते थे । वह तेजी से कदम बढ़ाता हुआ बगीचे में पहुँच ही तो गया । अपनी भावी जिन्दगी के बारे में लता सोच रही थी कि दूसरी स्त्रियों की अपेक्षा वह किन साधनों के जरिये अपने जीवन में पूरा-पूरा लाभ उठा सकती है कि इतने में ही उसे एक नवव्रतन हँसती हुई मुद्रा में उसे दीख पड़ा । क्षण भर के लिये वह आश्चर्य-चकित हो गई कि ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो उसके पावन विचारों को दूषित बनाना ही चाहता है । उसे जैसे लगा कि वह व्यक्ति अब उसे अपना ही बनाना चाहता है । फिर भी उसने दृढ़ निश्चय कर ली कि वह कमजोर हृदयवाली नारी नहीं है कि जो चाहे उसके विचारों को बदल दे । अब वह सँभल गई और क्या देखती है कि सामने उमेश ही तो खड़ा है । वह लज्जा से गड़ गई और नीचे की ओर ताकने लगी । उमेश ने इस मौके से पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहा । अब उससे रहा नहीं गया और बोल ही तो उठा—“लता ! आज क्यों तुम इतना लज्जित हो गई हो ? मालूम होता है कि मैं कोई नया व्यक्ति हूँ । मैं तो वही पुराना प्रेमी हूँ जिसके हाथों तुमने अपना जीवन तक न्योछावर कर दी है । कम से कम यह तो बताओ कि आज तुम्हारी उदासी का कुछ कारण भी है या नहीं ?”

लता—“प्यारे ! आज सचमुच मैं कुछ शरमा गई ।”

उमेश—“तो फिर शरमाने का कारण भी बताओगी या ऐसे ही टाल

दोगी ? तुम तो मुझे एक दिन में ही भूलकर पहचानने लायक भी नहीं रह गई न ?”

लता०—“ओह ! आपने तो बड़े आश्चर्य की बात कह डाली । क्या आप यह कभी स्वप्न में भी सोचने को तैयार हैं कि मैं आपको इतनी जल्दी भूलकर पहचान भी न सकूँ ?”

उ०—“नहीं, नहीं, मैं तो ऐसा कभी सोच भी नहीं सकता । यूँ ही बात के सिलसिले में कह डाला । तुम्हें लज्जित होते हुए देखकर ही पूछ बैठा था ।”

ल०—“लज्जित होना तो स्त्री-जाति का स्वभाव ही है । आपको भूल तो सकती नहीं । शायद घर पहुँच कर आप ही न मुझे भूल बैठे हों ! इसीलिये तो देखती हूँ कि आपको यहाँ आने में विलंब भी हुआ ।”

उ०—“नहीं, ऐसी बात नहीं है । मैंने सोचा कि शायद तुम कुछ देर करके यहाँ पहुँचोगी, अतः मैंने जान-बूझ कर कुछ देर कर दी । मैं तो खाते-पीते सोते-जागते और पढ़ते वक्त भी तुम्हें ही स्मरण किया करती हूँ । यदि तुम विश्वास न करो तो इसका गवाह तो ईश्वर ही है । मैं इससे अधिक और क्या बताऊँ ?”

ल०—“अच्छा, तो घर से क्या समाचार लाये ? पिता के बाद घर के मालिक भी तो आप ही हैं । कम से कम आप अपना विचार तो बताइये ।”

उ०—“घर से क्या समाचार लाऊँगा ? सब कुछ ठीक ही चल रहा है । मेरा विचार तो परीक्षा समाप्त होते ही तुम्हें अपने घर ले जाना है । इससे अधिक मैं और चाहूँगा ही क्या ? बात तो ठीक है न ?”

ल०—“यह भी आपसे कहने की बात थोड़े ही है । आपने इसके बारे में माँ-अप से भी पूछा है या अपने दिल से ही कह रहे हैं ?”

उ०—“मैं जब घर तक पहुँच आया तो क्या अब भी रात अधूरी ही रहेगी ? फिर भी बात बड़े विचित्र की है, लता !”

ल०—“ तो फिर बताइये न ? ” व्यग्र होकर लता बोल उठी ।

उ०—“ माँ-बाप दोनों ने शादी का भार मेरे ही ऊपर छोड़ दिया है । ”

ल०—“ यह मैं कैसे मान सकती हूँ कि माँ-बाप के रहते पुत्र अपने मनमाने ढंग से अपनी शादी कर ले ? मैं जहाँ तक सोचती हूँ, आपके पिता अवश्य ही पुराने विचार के व्यक्ति हैं । यदि बात ऐसी है तो वे हम दोनों की जोड़ी को किस प्रकार देख सकते हैं ? तिस पर भी तो जाति का बहुत बड़ा अंतर है । मैं आपकी विरादरी में पली रहती तो अभी और इसी समय आपके साथ जाने को तैयार हो जाती । पर समस्या तो बड़ा जटिल है । यदि आपके माँ-बाप हम लोगों के विचार में सहमत न हों तो क्या आपने ऐसा स्थान भी ढूँढ़ा है जहाँ कि हम दोनों सुख से जीवन यापन करें ? ”

उ०—“ लता ! पिताजी तो कट्टर सनातनी हैं । तुम्हारी जाति के बारे में मैंने उनसे कुछ भी नहीं कहा । सिर्फ इतना ही कहा कि मेरी शादी मेरे ही ऊपर छोड़ दीजिये । हम दोनों में बहुत देर तक बातचीत चलती रही । बीच-बीच में पिताजी रुष्ट भी हो जाते थे और मुझे तुमसे विवाह करने के लिए अपनी सलाह तक नहीं दिये । वे इसके बारे में मुझे बहुत समझाने बुझाने भी लग गये । पर मैं अपनी ही बात पर अड़ा रहा । जब उन्हें यह मालूम हो गया कि मेरे ऊपर उनकी बात का जरा भी असर नहीं पड़ता है तो मजबूर होकर उन्हें शादी के मामले को मेरे ऊपर ही छोड़ देना पड़ा । मैं जब अपने कमरे में गया तो वहाँ भी माँ ने मेरा पिंड न छोड़ा । उससे भी खूब बहस हुई और अंत में मैं ही विजयी हुआ । मैंने माँ को यह भी सुना दिया कि मैं अपने विवाह में एक पैसा भी खर्च न करूँगा । मैं चुपचाप बहू को घर में ले आऊँगा और तुम जो चाहना उससे काम कर लेना । प्रथम तो माँ भी मेरे ऊपर झुँझलाई । जब उसे मालूम हुआ कि मैं अपनी प्रतिज्ञा में अटल हूँ, वह मेरा दिल दुखाना पसन्द नहीं करने लगी । अंत में उसने भी मुझे इस कार्य में पूरा अधिकार दे दी । मैंने तो अभी तक ऐसा कोई भी स्थान नहीं खोजा है जहाँ हम दोनों सुख से रहें । हाँ ! मैं यह पूरे इतमीनान के साथ कह रहा हूँ कि मैं तुम्हें जहाँ

भी ले जाऊँ तुम भूखी नहीं रह सकती। मैं यह अभी तक नहीं समझ सका हूँ कि मैं किस प्रकार माँ-बाप को खुश रख सकूँ।”

ल०—“इस रास्ते को निष्कण्टक बनाना तो मुझे एक ही उपाय सूझता है। वह यह है कि आप यद घर पर पत्र लिख दें कि आपने कन्या खोज लिया है, तो कैसा हो? आप साथ-साथ यह भी लिख दें कि आप मेरे सिवाय दूसरी किसी भी लड़की से शादी करना नहीं चाहते। दूसरी बात यह भी तो है कि आप जो कुछ भी करना चाहें या करें वह बात तो आपके पिता-माता को माननी ही पड़ेगी। क्योंकि घर के अधिष्ठाता तो अब आपही होने चले हैं। जब आप भी एक छोटी सी बात न रख दी जायगी तो दोष और लोगों का भी है। इसलिये यही उपाय हमें ठीक जँचता है और इसके मुताबिक काम होने पर ही हम दोनों एक प्राण दो शरीर होकर जीवन का पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं। मुझे तो यही तरकोब अच्छी मालूम होती है, अब आप भी कुछ सोच-विचार कर अपना विचार प्रकट करें।”

उ०—“हाँ लता! मुझे भी यह उपाय अच्छा जँचता है। मैं भी कितना सोचता था कि किस ढंग से काम लूँ, पर मैं किसी छोर तक पहुँच ही नहीं पाया। मर्द को स्त्री से बहुत-कुछ सहायता मिल सकती है। यह बात मैं आज स्पष्ट होते हुए देखता हूँ। यदि तुम न होती तो शायद मैं अर्थ का अनर्थ कर डालने को तैनात रहता। इस कार्य के लिये मैं तुम्हें क्या बधाई दूँ मेरी समझ में कुछ भी नहीं आती। खैर, तो मैं कल पत्र लिख कर घर भेज दूँगा। जब तक इधर परीक्षा समाप्त हो जाय तब तक कम से कम उधर मामला भी सुधर जाय। इतना होने पर तो हम दोनों हँसी-खुशी से एक नया संसार बसाने को समर्थ हो सकते हैं।”

ल०—“हालांकि मैं स्त्री-जाति हूँ, मुझे आपसे ऐसी बातें नहीं करनी

चाहिये थीं। पर मैं अपना जीवन ही तो आपके लिये न्योछावर कर डाली हूँ। इसीलिये जहाँ तक भले-बुरे का ज्ञान रख कर बताई हूँ।”

उ०—“मैं यह सब जानता हूँ, लता ! कि तुम मेरे लिये कहाँ तक साथ दे सकती हो। यदि मैं तुम्हारे विचारों से अनभिज्ञ रहता तो मैं क्यों कर तुम्हें चाहने लगता ? प्रेम दो तरफा होता है और इसीलिये प्रेमी और प्रेमिका दोनों को ही यह समान अधिकार है कि दोनों एक दूसरे को दिल से चाहें। तुम में और मुझे में ठीक यही घटना घटती दिखाई देती है। यदि हम दोनों की रूढ़ एक ही है तो हमलोगों का कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। तुम जो कुछ भी बताई हो सही बताई हो। इसके लिये तुम कुछ भी चिन्ता न किया करो। काम अपने आप ठीक हो जायगा।”

ल०—“मैं भी यही चाहती हूँ कि कार्य यथा-संभव शीघ्र हो जाय। इस बात का निपटारा भी आप तुरन्त कर लें।”

उ०—“हाँ, तो मैं कल ही घर पर खबर भेज दूँगा। वहाँ से जो कुछ भी सूचना मिलेगी बता ही दूँगा। उसके पश्चात् हम दोनों की सलाह से जो उचित ठहरेगा किया ही जायगा।”

उमेश और लता को बात-चीत करते-करते देर भी हो गई थी। इसलिये दोनों अब अपने-अपने स्थान को लौट जाना चाहते थे। दोनों ने चौथे रोज फिर उसी जगह पर मिलने का वादा किया। इस प्रकार एक दूसरे से बिछुड़ते समय उन्हें असह्य वेदना हुई। इसका मुख्य कारण यह था कि वे दोनों एक दूसरे से मिल तो पाते, पर इच्छा की पूर्ति करने में आज तक असमर्थ ही थे। उनकी इच्छाएँ उनके दिल के अंदर ही रह जातीं और इसीलिये एक दूसरे से अलग होते समय उन्हें दारुण पीड़ा होती थी। उमेश लौटकर पुनः होस्टल के कमरे में आ पहुँचा। अब उसका सबसे पहला काम घर पर पत्र लिख भेजने का था। अतः उमेश राइटिङ्ग-पैड लेकर पत्र लिखने बैठ गया। उसके पत्र का सारांश नीचे दिया जाता है।

पूज्यवर पिताजी

रूम नं० ८

सादर प्रमाण !

बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि मैं आज तक आपकी सेवा में अनुपस्थित रहा। खैर, समय तो आ ही रहा है, जब कि मैं भी आपके लिये कुल्ल कर सकूँ।

पिताजी ! यदि कोई भी व्यक्ति मेरी शादी की चर्चा चलाने आवे तो आप साफ इन्कार कर दीजियेगा, जैसा कि मैंने आपको कहा था। अतः आप इस कार्य से बिल्कुल परे रहिये। मैंने एक विदुषी बालिका को न्योज लिया है। उसके गुणों की परीक्षा लेने पर वह सफलता की चरम सीमा तक पहुँच गई है। वह भी मुझे ही चाहती है और आन्तरिक दिल से चाहती है। वह मुझे छोड़ और कहीं भी जाने को तैयार नहीं है। उसने अपने जीवन को मेरे ही उपर न्योछावर कर दी है। विधवा माँ को छोड़ उसके और कोई नहीं हैं। मैंने भी देखा कि मैं कुँवारा ही हूँ। यदि मैं उससे शादी नहीं करता हूँ तो वह आत्म बलिदान करने तक को तैयार है। इतना बड़ा पाप मैं अपने सिर पर कैसे लूँ ? अब आप यह न कहें कि मैंने आपको सूचित न किया। और अधिक बातें आप माँ से समझ लें। सिर्फ आपकी आज्ञा मिलते ही परीक्षोपरान्त सदम्पति सेवा में उपस्थित होऊँ। अतः जवाब अविलंब भेजें।

मैं कुशल हूँ। आपका कुशल सदा ईश्वर से मनाता हूँ।

आज्ञाकारी पुत्र,

उमेश

दूसरे दिन सबेरे ही उमेश ने पिता के पास पत्र भेज दिया। उसके दिल में यह विचार आया कि कहीं वे गफलत में न पड़ जाँय। पत्र लिख चुकने के बाद वह बहुत देर तक सोचता-विचारता रहा। यदि वह पत्र न भेजे तो बहुत बड़े दोष का भागी हो सकता है। उस दोष को अभी से ही मिटाना अच्छा है। बहुत देर तक विचार-विमर्श करने के पश्चात्

वह इसी नतीजे पर उतर आया कि पत्र भेज देने में ही अच्छा है। अब उसने वह पत्र पिता जी के पास भेज ही तो दिया।

पत्र को पढ़ते ही ठाकुर साहब भिन्ना गये। एक तो वे पहले से ही इस बात की फिक्र में पड़े थे कि किस प्रकार उमेश का विचार बदल सकता है। ठाकुराइन ने भीलता के बारे में ठाकुर साहब को बहुत-कुछ बातें बता दी थीं। अब ठाकुर साहब का दिमाग और भी खराब हो रहा था। वे सोच भी न सके कि मामला किस प्रकार और भी उलभता जा रहा है। अपने पुत्र से उन्होंने बड़ी-बड़ी आशाएँ की थीं, पर अब सभी आशाओं में पानी फिरते हुए देखकर वे एक प्रकार से हताश हो गये। पत्नी को भी उन्होंने अपने पास बुलाया और कई घंटों तक इस विषय में बातचीत की। 'मरता क्या न करता' कि बात उन्हें याद हो आई। उनकी उमर भी तो अब ढलती जा रही थी। उन्होंने देखा कि उन्हें अपने जीवन से बहुत ही थोड़ी आशा है। अब उमेश के ऊपर ही उनका भरोसा था। यदि वे उमेश की बात नहीं रखते हैं तो हो सकता है कि वह आजीवन घर से बाहर ही बाहर रहे। वे अपने इकलौते पुत्र को आँखों से ओझल होना भी तो पसन्द नहीं करते थे। ईश्वर ने तो उन्हें एकही पुत्र दिया था और उसे भी खोकर वे निस्संतान किस प्रकार हो सकते थे। भले-बुरे लड़के तो सबके हुश्रा करते हैं। सभी के पुत्र भले ही होने लगें तब तो फिर एक बार राम-राज्य हो जाय। उमेश अवश्य ही किसी के प्रेम में फँस गया है जिससे वह इस तरह की चिन्ही लिखता है। यदि उसके मनोनुकूल कार्य न करने दिया जाय तो घर की सारी मर्यादा रसातल को पहुँच जाय। इस प्रकार ठाकुर साहब बहुत देर तक सोचने के बाद भी किसी नतीजे पर न पहुँच सके। अंत में उन्हें यही उपाय सूझा कि वे उमेश के पत्र का उचित उत्तर भेज दें। इस प्रकार वे कलम दवात लेकर बैठ ही तो गये और पत्र का जवाब लिखने लग गये। उसका सारांश निम्नलिखित है।

शिवपुर

मेरे प्यारे पुत्र उमेश !

तुम्हारी चिन्हीमिली। उसे पढ़ते ही मैं हत-बुद्धि सा हो गया। मैं तुम्हारी शादी के लिये अनुमति दूँ तब भी अच्छा नहीं और न दूँ तब भी बुरा ही दीखता है। अब तो मैं वृद्धावस्था में पहुँच ही गया हूँ। मेरे पश्चात् पर के सारे कार्य तो तुम्हीं को करना होगा। किसी के जीवन को सफल बनाना तो मैं बुरा कार्य नहीं बताता, पर असल में बात यह है कि आगे की बात को सोचकर करने से उसका नतीजा अच्छा निकलता है। पहले तो तुम्हारा विचार इस तरह का नहीं था। मालूम नहीं आजकल क्यों और कैसे बदल गया है। तुम लड़की की मीठी-मीठी बातों को सुनकर अपने को भूल-सा गये हो। यदि मैं भी तुम्हारे तरह स्वच्छंद विचरता तो शायद लोग आज मुझे इतना न मानते। जो कोई भी विवाह करता है, अपने भविष्य को अच्छी तरह सोचकर; अर्थात् जिस विवाह से उसके घर में शांति बनी रहे और उसकी सन्तान को कोई भी नीचा निगाह से न देखने पावे। वंश को चलाना ही सोच-विचार कर शादी करने का मुख्य ध्येय है। यदि मेरी बात तुम्हें पसन्द है तो उसीके अनुकूल चलने में ही तुम्हारा कल्याण है। तुम मेरे सामने अभी बच्चे ही हो। तुम भले ही दुनिया भर की विद्या जान जाओ फिर भी पिता होने के नाते तुम्हें समझाना मेरा परम कर्तव्य है, जब कि तुम गलत रास्ते पर जा रहे हो। यदि तुम मेरी बात को अच्छा समझो तो पिता का बचन समझकर अपनी टिठाई को भूलने की कोशिश करो। तुम्हारी माँ से भी मुझे कुछ बातें मालूम हुईं। हम दोनों बड़े असमंजस में पड़ गये हैं कि अब क्या किया जाय। तुम्हारे पत्र से मालूम होता है कि तुम हमारी एक भी न सुनोगे। जब मैंने आज तक तुम्हें सुख में ही पलने दिया तो अब वृद्धावस्था में मेरे कारण तुम्हें कष्ट होते हुए देखना भी मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। यदि मैं तुम्हारे कार्य में अड़ंगा लगाने लगूँ तो यह भी उचित नहीं जँचता। यदि शादी करने के लिये अनुमति दूँ तब भी अच्छा नहीं। फिर भी अन्त में मैं यह लिख रहा हूँ कि तुम लड़की पसन्द

कर लो और इस बात की सूचना मुझे फौरन दे दो ताकि समय में विवाह कर दिया जाय ।

शेष कुशल हूँ । तुम्हारा कुशल चाहता हूँ ।

तुम्हारा पिता,

दिनेशचन्द्र

ठाकुर साहब ने पत्र का जवाब लिखकर उमेश के पास भेज दिया । उमेश ने उत्सुकता-पूर्वक उभ पत्र को बड़े गौर से पढ़ा । एक ही बार पढ़ने से वह सभी बातों को समझ न पाया । अतः उसने उस पत्र को दो या तीन बार पढ़ डाला । फिर भी उसने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह लता को अपने घर में ही ले जायगा । कन्या की तलाश के लिए ठाकुर साहब ने उमेश को थोड़ा-सा अधिकार दे ही दिया । उमेश ने अपने मन में सोचा कि जब पिता ने उसे कन्या खोजने के लिये कहा तो उसे घर ले जाने में भी कोई अत्युक्ति नहीं । यदि पिताजी को लता की जाति मालूम हो जायगी तो अवश्य ही वे उमेश को अपनी जाति में विवाह करने के लिये दबाव डालेंगे । उस समय उमेश के सम्मुख एक बहुत बड़ा प्रश्न उपस्थित हो जायगा । खैर, यह बात तो पीछे की है । पहले अपनी इच्छा की पूर्ति तो हो जाय, बाद में जैसा उचित ठहरेगा किया जायगा । इतना होने पर भी आज उमेश का चेहरा कुछ प्रसन्न दीखता था । इसका कारण यह था कि कल वह लता को सारी बातें बता सकेगा । लता भी यह सोचकर कि विवाह का भार अब उमेश के ही हाथ पर है, अवश्य ही खुशी होगी और अपना विचार प्रकट करेगी । यही सोचकर उसने पत्र को सँभाल कर रखा ताकि वह कल शाम को लता के सामने पिता के लिखे हुए पत्र को पेश कर सके । अब उमेश को इस विचार ने आ घेरा कि कब वह लता से मिलने पावे । मिलने का प्रोग्राम तो दूसरे दिन शाम के लिए ही बनाया गया था । फिर भी उमेश की इस समय की दशा वही प्रेमी लोग जान सकते हैं जो अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए उतावले हो उठते हैं । दूसरी

और उमेश खुशी ही खुशी मना रहा था। क्योंकि उसे इस काम के लिए वहाँ रोकनेवाला कोई था नहीं। इस तरह वह अपने दैनिक कार्य में लगकर अपने को इस चिंता से दूर रखने का प्रयत्न करने लगा। सदैव की भाँति वह सो रहा और कल की प्रतीक्षा में रात काटने लगा।

किसी तरह सुहावना सवेरा हुआ और उमेश अपने सभी कार्यों को करता गया। इसी प्रकार उसने दिन भी बिताया। जब संध्या होने लगी तो वह पिता के पत्र को लेकर उसी बाग की ओर निकल पड़ा जहाँ लता और उमेश जीवन के अनुपम सौंदर्य से लाभ उठाते थे। जब वह बगीचे में गया तो उसने लता को वहाँ नहीं देखा। इस ख्याल से कि अब लता आती ही होगी वह इधर-उधर टहलने लग गया। इतने में ही लता भी आ धमकी। अब तो उमेश से रहा नहीं गया और बोला—“लता ! आज तो तुम भी मुझे भूल गई थी न ? फिर कैसे याद हो आया ? गम्भीरता पूर्वक लता बोली—“यह और कुछ नहीं उस दिन का बदला ही तो था।”

इस प्रकार उमेश और लता टहलते-टहलते बगीचे के एक कोने तक पहुँच गये और दोनों में पुनः निम्नलिखित वार्तालाप शुरू हो गई।

उमेश—“लता ! तुम्हारी क्या राय है !”

लता—“अब तक क्या मैं अपना विचार ही प्रकट करती रहूँ ? पहले पिता का पत्र तो दोजिये।”

उ०—“हाँ ! यही है, लो !”

इतना कहकर उमेश ने पिता के पत्र को लता के हाथ में थमा दिया। अब वह बड़ी उत्सुकता पूर्वक उस पत्र को लेकर पढ़ने लगी और फिर उमेश से पूछ बैठी।

ल०—“आपने इस पत्र का मतलब ही क्या निकाला ?”

उ०—“मैंने मतलब जो कुछ भी निकाला हो मेरी एक मात्र इच्छा अब यही है कि सीधे तुम्हें अपना घर ले चलूँ।”

ल०—“यदि आपके माँ-बाप जाति-बिरादरी देखने के फेर में लग जायँ

तब कैसा हो ? सच बात तो यह है कि आप अपनी विरादगी में शादी भी तो नहीं कर रहे हैं ?”

उ०—“इससे क्या ? मैं जाति-पाँति को कुछ नहीं मानता । यह तो बूढ़े-पुराने लोगों का मत है कि अपनी जाति की स्त्री से पैदा हुआ पुत्र द्वारा ही तर्पण दिये जाने पर मरे हुए पिता को पानी मिल सकता है । मैं इसे कहाँ तक सच मानूँ यह तो मेरी समझ के बाहर की बात है । मैं किसी के कह जाने पर ही चलनेवाला व्यक्ति नहीं हूँ । हाँ इसके पहले मैं भला-बुरा सोच लेता हूँ । फिर भी मैं जीवन-पर्यन्त तुमसे अलग नहीं हो सकता । मेरे वचन की तुम अन्त समय तक परीक्षा कर लेना । सन्तान वगैरह के पोछे मैं नहीं पड़ता । मैं अपने कार्य में डटा हूँ और उससे तिल भर भी नहीं डिग सकता ! अब तुम्हीं बताओ कि मेरा कहना सच है या गलत ।”

ल०—“मैं तो सच ही मानती हूँ । आप जैसा समझें ।”

उ०—“अच्छा, तो अब परीक्षा समाप्त होते ही मैं तुम्हें अपने साथ घर ले जाऊँगा । तुम इसकी चिंता बिल्कुल मत करो कि मेरे घर वाले तुम्हें कुछ कहेंगे । यदि कुछ कह भी जायें तो तुम चुपचाप सुन लेना । मैं सभी व्यवस्थाओं को आप ठीक कर दूँगा । तुम मेरी माँ के स्वभाव से भी पूर्ण परिचित हो । मेरे सिवाय और कोई भी दूसरा व्यक्ति घर की समस्या को हल नहीं कर सकता । हम दोनों की उपस्थिति में ही कार्य ठीक रूप से चल सकते हैं । अब तुम्हीं बताओ मेरे विचार में तुम कहाँ तक सहमत हो ?”

ल०—“मैं आपके किसी भी कार्य में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती । मैं आपकी प्रत्येक बात का पालन करने के लिये हरदम तैयार रहती हूँ । यह तो आपसे कहने की कोई जरूरत ही नहीं है । आप को जो उचित जँचे, करें ।”

उ०—“यदि तुम्हारी माँ नाराज हुई, तब ?”

ल०—“उमे मैं किसी तरह मना ही लूँगी। इतना ही नहीं बल्कि मैं इस ढंग से काम लूँगी कि वह जीवन-पर्यन्त मुझे इस कार्य में दोषारोपण न करने पावे।”

उ०—“लता ! अब तो तुम मेरे सिवाय दूसरे की हो नहीं सकती। वह दिन कब आयेगा जब कि हम दोनों स्वच्छन्द रूप से किसी भी जगह एक साथ विहार कर सकें। अभी तो तुम देखती ही हो, हम दोनों के प्रेम में कितनी बड़ी रुकावट है। मैं अभी तो होस्टल में रहता हूँ। वहाँ तो तुन्हें ले भी नहीं जा सकता। जब इतने दिन बीत गये तो फिर अब कुछ दिन भी इसी तरह बीत जायेंगे। तुम्हें देखे बिना मेरा जीवन बिल्कुल नीरस हो जाता है। शायद तुम्हें भी ऐसा ही लगता हो।”

ल०—“हाँ प्यारे ! बात तो बिल्कुल सही है। स्त्री की हालत तो और भी बुरी हो जाती है। खैर, समय की फिक्र करना उचित नहीं। समय के जाते ही ढेर क्या लगती है। वह दिन अवश्य आयेगा और शीघ्र आयेगा जब कि हम दोनों एक ही भूले पर भूलते हुए नजर आयेंगे।”

उ०—“लता ! बात तो तुमने खूब गढ़ कर बताई। अच्छा ! तो आज मेरे साथ सिनेमा चलोगी ? देखो, समय भी हो रहा है। न जानें फिर कब मिलें।”

ल०—“इसमें भी कोई शक है ? मैं भी तो आज यही चाहती थी, पर आप से कह न सकी। मिलने के लिए आप शोक क्यों करते हैं ? जब कहिये तब सेवा में उपस्थित हो जाऊँ।”

उ०—“अधिक रात बीत जाने पर तुम्हारी माँ कुछ बोलेगी तो नहीं ?”

ल०—“खाक बोलेगी ? कुछ कहेगी भी तो जवाब दे दूँगी कि इधर कई दिनों से सिनेमा नहीं गई थी, इसलिये आज देखकर ही आई। बस वह चुप हो जायगी।”

उ०—“हाँ तो चलो।”

इतना कह चुकने पर उमेश और लता दोनों सिनेमा-गृह पहुँचे। दोनों

ने फस्ट क्लास का टिकट लिया और बड़े ठाठ से जा डटे। बीच-बीच में दोनों ही हँसा करते और आनन्द लूटते थे। उस समय वे इतने आनन्द-विभोर हो उठते थे कि उनका कहना ही क्या था ! इन्टरवाल होने पर दोनों ने उसी जगह पर चाय-पानी किया। पश्चात् फिर सिनेमा चालू हो गया और वे दोनों चित्र-पट पर आँख गड़ाये हुए दीखने लगे। किसी तरह सिनेमा समाप्त हुआ और दोनों ही बाहर निकल पड़े। उमेश ने पूछा—“रिक्शे पर टहलने चलोगी ?” बड़ी नम्रतापूर्वक लता ने जवाब दी—“आज के लिए मुझे क्षमा करें। एक तो ऐसे भी देर हो गई है, दूसरे, बहुत देर करके घर पहुँचने पर माँ अवश्य बिगड़ेगी। फिर किसी दिन टहल ही लूँगी। उस समय कुछ न चोलूँगी। अब इस समय मुझे घर जाने की इजाजत दें।” खिन्न मन से उमेश बोला—“हाँ तो ज.ओ, पर भूलना मत। बीच-बीच में अवश्य मिलने का प्रयत्न करना। हो सके तो मैं ही तुम्हारे दरवाजे तक पहुँच जाऊँ। उस समय तुम खिड़की से मुझे देख ही लोगी। उसके बाद तो फिर मुरझाई हुई आशा पुनः हरी-भरी हो जायगी। अच्छा तो अब घर का रास्ता पकड़ो और मैं भी होस्टल की ओर चला।”

उमेश और लता दोनों एक दूसरे से त्रिछुड़ कर अपने-अपने घर की ओर चल पड़े। एक दूसरे से अलग होते समय दोनों के दिल में गहरी चोट पहुँची, पर उस समय उन्होंने बड़े धैर्य से काम लिया। आज लता बहुत देर करके घर पहुँची। उसकी माँ ने पूछा—बेटी लता ! अभी तक तुम कहाँ रही ?” लता ने जवाब दिया—“माँ ! बुरा न मानो तो सच-सच बताऊँ। इधर कई दिनों से सिनेमा देखने की प्रबल इच्छा थी। वह इच्छा पूर्ण न हो सकी थी। आज देखकर ही दम ली हूँ। साथ-साथ बाग से लौटते वक्त रास्ते में ही सिनेमा-गृह पड़ता था। आज अपनी इच्छा को किसी भी प्रकार रोक न सकी। अतः टिकट कटा ही ली और हाल के अन्दर चल पड़ी। उसके बाद इस ओर चल पड़ी हूँ।” इतना कहकर

लता ने आधा टिकट माँ को दिखला कर उसी क्षण उसे फाड़कर फेंक दी। माँ कुछ नहीं बोल सकी और इस प्रकार चुपके से उमेश से मिलने का रहस्य अभी तक छिपा ही रहा।

लता की माँ आज कल रोज दो-तीन घंटे के लिये बाहर जाने लगी थी। अपनी माँ को ऐसा करते देख इसका कारण जानने के लिए लता अपनी माँ से एक दिन उत्सुकता-पूर्वक पूछ बैठी—“माँ! आज-कल तुम बराबर बाहर जाती हुई दीखती हो। मैं बात कुछ भी नहीं समझ पाई। मुझे कहना क्या उचित नहीं है?” लता की माँ उग्र स्वाँस लेकर बोली—“बेटी! तुम भी अब कुछ बड़ी हो चली हो। अब मुझे जिन्दगी में एक मुख्य कार्य कम्नी है और वह है तुम्हारी शादी। इस लिये रोज योग्य घर की तलाश किया करती हूँ। घर तो बहुत से मिलते हैं, पर पसन्द लायक एक भी नहीं। यदि पढ़ा-लिखा हुआ लड़का मिलता है तो सबसे पहले दहेज की चर्चा होने लगती है। लड़का के घर वाले इतना दहेज माँगते हैं कि तुम्हारे और मेरे बाप की सारी कमाई ही चली जाती है। तुम्हारे पीछे मैं घर की बरबादी भी तो नहीं देख सकती। यदि लड़का थोड़ा ही पढ़ा-लिखा मिलता है तो उसके घर के व्यवहार अच्छे नहीं दीखते। मैं तो चाहती हूँ कि लड़का गरीब ही हो, पर पढ़ा-लिखा और चरित्रवान हो। मैं जहाँ भी जाती हूँ मुझे अपना सा मुँह लेकर घर की ओर लौटना ही पड़ता है। तुम्हारे पिता आज जीवित रहते तो मेरी यह दशा न होती। अभी तक शायद तुम भी एक बच्चे की माँ हो गई होती यहाँ तो अभी विवाह की समस्या ही उभली हुई है, लड़के-बच्चे की तो बात ही अलग है। मैं यह कदापि नहीं चाहती कि मेरे रहते तुम दूसरे के घर में जाकर रात-दिन रोती रहो। यह कारण है कि कुछ समय के लिये मुझे बाहर जाना ही पड़ता है।” लता बोल उठी—“माँ! बस विवाह की बात अभी रहने दो। कॉलेज में पचीस वर्ष की लड़कियाँ भी पढ़ती दिखाई देती हैं। क्या उनके माँ-बाप को अभी तक उनकी शादी

के लिए कुछ भी फिक्र नहीं होती ? तुम्हें अभी से ही चिंता किस प्रकार सताने लग गई ? मेरी उम्र अभी गई क्या है ? पहले मुझे खूब पढ़ लेने दो, बाद में जो इच्छा हो, करना ।” माँ कुछ चिंतित होकर बोली—“बेटी । तुम्हें अभी क्या मालूम कि विवाह किस चिड़िया का नाम है ? घर का व्यवहार चलाना कितना कठिन होता है यह तो तुम्हें बाद में पता चलेगा । अब कुछ बच्चे की माँ बनोगी तभी दुनियाँ की थोड़ी-बहुत बातें जान सकती हो । खैर, तुम सिर्फ अपना काम करती जाओ । इसकी फिक्र तो मुझे है न ? तुम्हें क्या ? तुम तो सुख से अपने पति के घर रहोगी । फिर मुझे कौन पूछे ? इतना होने पर भी मैं अपने शरीर का ख्याल नहीं किया करती । मैं इतना ही चाहती हूँ कि तुम भले घर में ब्याहो और चैन से अपनी जिन्दगी गुजारो ।”

माँ द्वारा इतना कह चुकने पर लता उसी समय उठ गई और दूसरे कमरे में चली गई । वहाँ जाकर वह एक खटिये पर बैठ गई और रोने लगी । उसी समय उसकी माँ भी वहाँ पहुँच गई । अपनी पुत्री को रोती हुई अवस्था में पाकर माँ बोली—“बेटी ! तुम रोती क्यों हो ? पढ़ी-लिखी और सयानी लड़की को ऐसा कभी नहीं करना चाहिये । क्या तुम कुँवारी रहो यही अच्छा है ? अब मेरा भी तो इस संसार से चलने का समय करीब हो आया है । तुम एक लड़की को मैं पार न लगाऊँगी तब तो मेरा जीना भी धिक्कार है । मैं तो अब यही चाहती हूँ कि तुम्हारी शादी हो जाय तो मैं एक कमरे में रहकर रात-दिन देवता का स्मरण करती रहूँ । घर की सभी वस्तुएँ तो तुम्हारी हैं ? अब मेरा रह ही कौन गया है ? इसलिये तुम इतनी बड़ो होकर भी बच्ची की तरह रोने लग जाती हो, जिसका मतलब मैं कुछ भी नहीं समझ पाई । कम से कम तुम अपनी आन्तरिक इच्छा तो बताओ । यदि मैंने तुम्हें माँ की तरह पाली-पोसी है तो मुझे बतलाने में तुम्हें कुछ भी संकोच नहीं करना चाहिये । तुम्हारी जो भी इच्छा हो मुझे साफ-साफ बतलाओ । मुझसे जहाँ तक बन सकेगा मैं तुम्हें सन्तुष्ट रखने

का प्रयत्न करूँगी। बेटी! रोओ मत। जरा अपने भविष्य का खयाल रख कर मुझे कहो।” लता ने आँसू पोछते हुए जवाब दी—“माँ! मैं जिस काम को उठा रखी हूँ पहले उसे तो समाप्त हो लेने दो। मैं यही चाहती हूँ कि शादी का भार तुम मेरे ही ऊपर छोड़ दो। जब तुम दूसरे के घर स्वयं जाती हो तो लोग तुम्हें खुशामद करती हुई समझ कर बड़े अहंकार से बातें करने लग जाते हैं। तुम इसके लिये अधिक परेशान मत होओ। तुम अब इससे अधिक मत भट्को!” इतना कह चुकने पर लता उठ कर अन्य कमरे में चली गई। माँ भी बड़े भारी हृदय को लेकर चुपचाप वहाँ से उठ गई और अपने कार्य में लग गई।

नौ

लता के घर में उसकी कान्ता नामक सहेली बग़र आया-जाया करती थी। लता अपनी सहेली कान्ता को अत्यधिक चाहती थी और कान्ता लता को। दोनों के दो शरीर और एक प्राण थे। जब कान्ता लता से मुलाकात करने आती तो लता की माँ उस समय बड़ी खुशी होती। लता का कान्ता के साथ घनष्ठ सम्बन्ध देखकर लता की माँ मुग्ध हो जाती और कान्ता को बेटी कह कर पुकारती थी। कान्ता भी लता की माँ को अपनी माँ की तरह मानती थी और उसे अपनी माँ की तरह बड़े प्रेम से पुकारती थी। जिस रात को लता अपनी माँ के मुँह से अपनी शादी की बात सुनकर रो रही थी उसके ठीक दूसरे ही दिन कान्ता भी लता के घर में आई। उस समय लता अपने पढ़ने के कमरे में बैठकर कालेज का काम कर रही थी। ज्यों ही कान्ता दरवाजे पर पहुँची लता की माँ ने उसे देख ली और संकेत करके उसे दूसरे कमरे में ले गई और पूछ बैठी।

लता की माँ—“कहो बेटिया! आज तो तुम बहुत दिनों के पश्चात्

दिखाई दे रही हो। अच्छी तो रही न ?”

कान्ता—“हाँ माँ ! सब आपकी कृपा है। अवकाश न मिलने के कारण कई दिनों बाद आई हूँ, क्षमा करना।”

लता की माँ—“लता की शादी के लिये मैंने बहुत से वरों की तलाश कर ली है, पर एक भी पसन्द न आया। इस बात को मैंने कल लता से भी बतला दी। वह गेने लगी और कहने लगी कि वह अभी विवाह नहीं करेगी। फिर उसने यह भी बतलाई कि उसकी शादी का भार मैं उसके ऊपर ही छोड़ दूँ। मैं तो कुछ भी समझ न पाई। एक बात और भी है कि वह अक्सर शाम को टहलने के बहाने घर से निकल पड़ती है। लड़को का इस प्रकार घर से अकेले निकलना भी तो ठीक नहीं जँचता। फिर कल सिनेमा भी देख कर आई। यदि उसे जाने की इच्छा रहती तो मुझे बता देती। पहले के ऐसा उमे खाने की वस्तुओं में भी रुचि होते हुए नहीं दिखाई देती। इधर कुछ दिनों से पढ़ने में परिश्रम भी कुछ कम करती हुई दिखाई देती है और रात में भी जल्दी सो जातो है। उम्र के अनुसार तो उसे खाना भी कुछ अधिक चाहिये और साथ-साथ पढ़ने में कठिन परिश्रम करना चाहिये। उसकी विपरीत हालत देखकर मैं कुछ सहम गई हूँ और दिल में यह सोचती हूँ कि दाल में कुछ काला अवश्य है। तुम उससे सभी बातें पूछकर मुझे बताओ कि आखिर वह क्या करना चाहती है। इस कार्य को तुम्हें बड़ी होशियारी से करनी होगी। कहीं लता यह न जान जाय कि मेरे बतलाने पर तुम ऐसा कर रही हो। क्यों ? बात तो ठीक है न ?”

कान्ता—“माँ ! तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। टहलने जाने के बहाने मैं उसे बाहर ले चलूँगी और रास्ते में या किसी बगीचे में जाकर पूछ लूँगी। तुम कल मेरे घर पर आ जाना और उसी समय मैं तुम्हें सभी हाल बता दूँगी। मैं पूरे सतर्कता के साथ इस कार्य को निभाऊँगी। तुम यह बिल्कुल मत सोचो कि मैं इस कार्य के करने में असफल रहूँगी, बल्कि तुम

निश्चित रहो। मुझे भी उसके स्वभाव में आजकल कुछ परिवर्तन सा दीखता है। बिना जाने हुए भी तो कुछ नहीं कह सकती। खैर, असली बात मालूम हो ही जायगी।”

लता की माँ—“हाँ तो बेटा ! लता अपने कमरे में है। चुपके से जाओ और उससे मिल लो।”

कान्ता—“अच्छा माँ, मैं चली।”

इतना कह चुकने पर कान्ता लता के कमरे में गई। लता ने एकाएक कान्ता को देखकर लिखना बन्द कर दी। लता ने कान्ता को पासवाले कुर्सी पर बैठने को सकेत कर उससे हाल-खबर पूछने लगी। कान्ता ने सभी हाल बता दी और साथ-साथ लता से टहलने जाने के लिए भी अनुरोध करने लगी। पहले तो लता ने अस्वीकार की, पर कान्ता के बहुत जिद्द करने पर वह किसी तरह चलने को उतारू हुई। अब लता उठी और कान्ता के साथ टहलने जाने के लिए अपनी माँ से आज्ञा माँग ली। माँ ने भी उसे जाने के लिए आज्ञा दे दी और दोनों एक बाग में पहुँच गईं। कान्ता ने लता से सभी हाल मालूम कर ली और अब कान्ता को पूर्ण विश्वास हो गया कि लता उमेश को छोड़कर संसार के अन्य किसी भी व्यक्ति से विवाह करना नहीं चाहती। अब रात भी हो चली थी और इसलिये दोनों ही अपने-अपने घर की ओर चल पड़ीं।

दूसरे दिन सदा की भाँति सबेरे ही लता की माँ जाग गई। अब उसके दिल में यही उत्सुकता रहने लगी कि वह कब कान्ता के घर पहुँच कर अपनी पुत्री का पूरा-पूरा हाल मालूम करे। कुछ देर बाद लता भी उठ गई और अपने काम में लग गई। सूरज के उग जाने पर लता की माँ लता से कुछ देर पश्चात् लौट आने का वादा कर कान्ता के घर चल पड़ी। उसे लता की सारी बातें कान्ता से मालूम हो गईं। अब वह कुछ सोच भी न सकी कि वह लता को किस प्रकार मना सकती है। वह तो केवल अपनी लड़की को समझा ही सकती है। जबरदस्ती तो किसी के हाथ लता को

सौंप नहीं सकती। अब कुछ देर बाद वह अपने घर लौट पड़ी। जब सन्ध्या हुई तो वह लता को समझाने लगी। लता सिर्फ इतना ही कहती कि अभी उसे विवाह करने की इच्छा नहीं है। सचमुच में लता का विचार भी यही था। उसकी माँ ताड़ गई कि उसकी लड़की इस प्रकार नहीं मान सकती। वह अनेकों उपाय करके थक गई, पर लता अपनी ही धुन में पकड़ी रहती हुई दिखाई दी। लता की माँ किसी तरह अपना दैनिक कार्य करती जाती थी। बीच-बीच में कान्ता भी आकर उसे बहुत समझाया-बुझाया करती थी और कहती थी कि जब लता ही मानने के लिये तैयार नहीं है तो क्या ही क्या जाय? किसी का विवाह तो जरूरदस्ती हो नहीं सकता। जब लता उमेश के गुणों से पूर्ण परिचित है तो योग्य वर उसे ही ढूँढ़ने देने में हर्ज ही क्या है? अब समय भी पहले का सा नहीं है। अवस्थानुकूल कार्य भी करना चाहिये। कान्ता के मुँह से ऐसी बातें सुनकर लता की माँ कुछ भी नहीं बोल पाई। वह सिर्फ 'हाँ यह तो ठीक है' इतना ही जवाब देती। इसी प्रकार कई दिन बीत गए, पर लता में कुछ भी परिवर्तन होता हुआ नहीं दिख पड़ा। उसकी माँ भी उदास रहने लगी और अब वह किसी दूसरे के घर भी नहीं जाने लगी।

लगभग एक महीना पश्चात् एक दिन लता अपनी माँ से चिंतित होने का कारण पूछ बैठी। माँ ने बड़े अफसोस के साथ कहा—“बेटी! कारण तो तुम स्वयं जानती ही हो। यदि बुढ़ापे में भी मुझे सुख न मिले तो अब मेरा जीना व्यर्थ है।” जवाब देती हुई लता बोली—“माँ! तुम शोक न करो। मैं जिस कार्य को करती हूँ उसे भली प्रकार पहले ही सोच लेती हूँ। ज। मैं यह जान गई कि उमेश मेरे लिए सब कुछ करने को तैयार है तब मैंने भी उसके साथ विवाह करने का वचन दे दी। वह बहुत ही शरफ आदमी है और उसके गुणों का वर्णन जितना भी किया जाय, थोड़ा है। जब मैंने सोच ली कि उसके साथ जाने में मुझे किसी भी कष्ट का सामना नकरनी पड़ेगा तो मैं ऐसा करने को मजबूर हो गई। इसके अतिरिक्त

उसने माँ और बाप को भी इस बात की सूचना भेजकर उनको मना लिया है। वह अपने पिता द्वारा लिखे गये पत्र को एक दिन मुझे भी दिखलाता था। अतः यह जानते हुए कि अब मैं अपने को बहुत बड़े व्यक्ति के घर में पाऊँगी, मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। इस सम्बन्ध में मैंने बहुत सोच-विचार कर ली है। तुम यह कभी मत खयाल करो कि मैं अपने भविष्य को मटियामेट कर रही हूँ। अब सिर्फ तुम्हारी सलाह लेने भर की देर है। कहीं ऐसा न हो कि तुम पश्चाताप में पड़ जाओ और पास पड़ोस के लोग मुझे बुरे नजर से देखें।” लता के इतना कह चुकने पर माँ बोली—“अच्छा तो बेटा ! मैं स्त्री जाति ही ठहरी। मे कहाँ तक तुम्हारे पीछे दौड़ सकती हूँ ? समेद वाल अब यह कह रहे हैं कि यात्रा के लिये तैयार हो जाओ। मैं तो सिर्फ तुम्हारे लिये ही जी रही हूँ।” लता बोली—“नहीं माँ ! ऐसा मत कहो। मेरी बातों पर यदि तुम पूर्ण विश्वास नहीं करती हो तो मैं उमेश को यहीं बुलाकर तुम्हें दिखला दूँ। मेरे कहने और उसको देखने में तुम कितना अन्तर निकाल सकती हो, यह तो मैं उसी समय समझ जऊँगी। मैं यही चाहती हूँ कि पहले तुम उमेश को इच्छा भर देख लो और तब कहीं मुझे किसी काम-को करने के लिए आज्ञा देना ! बिना तुम्हारी सलाह के मैं किसी भी कार्य के करने में अग्रसर नहीं होना चाहती। तुम जैसा उचित समझो मुझे आज्ञा दो।” लता की माँ लम्बी साँस लेती हुई बोली—“खैर, जब तुम इस तरह की बातें करती हो तो उमेश को एक बार यहाँ लेती आओ। मैं भी उसे अपनी जिंदगी में कम से कम एक बार तो देख लूँ और यह सोच कर सन्तोष कर लूँ कि ईश्वर ने तुम्हारे लिए योग्य वर दिया है। यदि उसे देख न पाई तो मेरी इच्छा दिल के अन्दर ही रह जायगी और इसी बात की फिक्र में शायद मेरा प्राणांत भी हो जाय।” लता बोल उठी—“नहीं माँ ये शब्द तुम्हारे मुँह से निकलने लायक नहीं। ईश्वर जो कुछ भी करता है भले के लिये। अच्छा तो मैं उमेश से मिलते ही उसे यहाँ ले आऊँगी। तुम बिल्कुल चिंता न करो।

उसी समय तुम जान जाओगी कि मैं ठीक रास्ते पर चल रही हूँ या गलत।” कुछ सोच में पड़कर माँ बोली—“अच्छा बेटी ! जब तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं क्यों रोऊँ ? तुम्हारी जब भी इच्छा हो अपने साथ उमेश को यहाँ लेती आओ।”

इतना कह चुकने पर लता की माँ वहाँ से उठकर अपने गृह कार्य में लग गई। लता अपनी सफलता पर विजय पा गई थी और इसीलिये वह आज बहुत प्रसन्न-मुद्रा में दिखाई दे रही थी। उसने अपनी माँ को किसी तरह समझा-बुझाकर उसे मना कर ही दम ली। उसने यह बात जान ली कि उसकी माँ उसकी शादी के लिये ही व्याकुल हो रही है। यदि वह चाहती तो माँ से कुछ कहे बिना ही उमेश के संग उसके घर चली जाती। पर एक बार माँ को कह देना उचित जानकर वह कह बैठी। अब लता निश्चित रहने लगी, क्योंकि अब उसे किसी भी प्रकार का भय न था। रास्ते के काँटे को उसने करुणामता द्वारा किनारे हटा दी और वह मन ही मन इस कार्य के लिए ईश्वर को सैकड़ों धन्यवाद देने लगी।

दूसरे दिन संध्या को लता टहलने के लिये बाहर निकल पड़ी। इस समय उसके चेहरे से हर्ष की आभा फूट रही थी और उसके चंचल नेत्रों को एक बार जो कोई भी देख लेता वहीं कुछ देर के लिये रुक जाता। भाग्यवश उमेश भी अपने एक मित्र के साथ बातचीत करता जा रहा था। लता के तीक्ष्ण नेत्रों ने उमेश को पहचान ही तो लिये। उमेश बात करने में इतना तल्लीन दिखाई देता था कि वह जैसे सामने की वस्तु को भी न पहचान पाता हो। अब लता से नहीं रहा गया। वह तेज कदम बढ़ाती हुई आगे निकल पड़ी और कुछ दूर जाकर पुनः वापस लौट आई। लौटते समय वह उमेश के ठीक सामने पड़ गई। इस बार लता और उमेश की आँखें चार हो गईं और दोनों के दिल में बिजली की धारा सी दौड़ प्रड़ी। उमेश ने लता को बाग में चलने के लिए संकेत किया। लता इतनी मूर्खान्ता नहीं थी कि वह उमेश के विचार को न समझ सके। वह

तुरन्त इस बात को ताड़ गई कि उमेश क्या चाहता है और उसी क्षण वह दूसरे रास्ते से बगीचे की ओर चल ही पड़ी। उमेश भी अपने मित्र से छुटकारा पाकर बगीचे में जाना चाहता था, पर उसका मित्र उसे साथ छोड़ना नहीं चाहता था। एक रिश्तेदार के यहाँ जाने का बहाना दिखाकर उमेश ने बड़े मुश्किल से अपने मित्र से छुटकारा पाया और वह सीधे बगीचे की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचने पर उसने लता को न देखा और इधर-उधर दहल कर बाग की सैर करने लगा। कुछ देर पश्चात् लता भी वहाँ आ धमकी। वस्त्र फिर क्या था दोनों की कई दिनों की मुश्किल हुई आशाएँ पुनः लहलहा उठीं।

उमेश ने लता को पहले से आज कुछ प्रसन्न मुद्रा में देखते हुए पूछा—“मेरी प्यारी लता ! बताओ तो सही, तुम्हारा चाँद-सा मुखड़ा तो आज खिल ही गया है। सचमुच तुम आज इन्द्र की अप्सरा ही मालूम होती हो। यदि मैं इसका कारण जान सकता हूँ तो मुझे खुलासा बताओ। जरा मैं भी समझ लूँ।” कुछ शरमाती हुई लता ने जवाब दी—“इससे अधिक आप मुझे न लजायें। यदि मैं अप्सरा रहती तो शायद अभी आप मेरे साथ स्वर्ग में पहुँच गये होते। आज यँ ही कुछ प्रसन्नता का अनुभव करती हूँ। आप से कई दिनों के पश्चात् एकाएक आज अपनी आशा को पूर्ण होते हुए जानकर पहले से मैं आज कुछ प्रसन्न अवश्य हूँ।” उमेश ने व्यंग करते हुए पूछा—“नहीं नहीं, बात तो कुछ अवश्य है। खैर, मुझे न बतलाकर यदि तुम्हें संतोष हो तो बत अपने दिल के अन्दर ही रखो। जब तुम बताने में संकोच करती हो तो मेरे माथा ठोकने से तो कुछ नहीं हो सकता।”

लता कुछ देर तक मौन-धारण करती रही। उसे चुपपी साधे हुए देख कर उमेश से नहीं रहा गया और वह पुनः आग्रह करके पूछ बैठा। इस बार लता चुप न बैठ सकी और बोली—“हाँ, तो जिस प्रकार आपने अपनी शादी के लिए माँ-बाप से सलाह ले ली है उसी प्रकार मैंने भी अपनी माँ

को मना ली है। खुशी की बात यह है कि माँ ने आज आपको आमन्त्रित भी की है और इसी समय आप मेरे साथ घर चलें। वह आपको देखकर अत्यन्त प्रसन्न होगी और आपसे विवाह के सम्बन्ध में चर्चा भी छेड़ देगी। मेरी समझ से तो इसमें बढ़कर सौभाग्य हम दोनों का और हो ही क्या सकता है? इस सुअवसर को आप अपने हाथ से न जाने दीजिये। आपके मेरे घर पहुँचने से विवाह का बंधन और भी दृढ़ हो सकता है। यदि माँ आपको देखने न पायेगी तो वह रात-दिन तड़पती रहेगी और उसी शोक में वह अपनी जान तक दे देगी।” लता के मुँह से इतनी बातें सुनकर उमेश गदगद हो गया और बोले—“हाँ, तो मैंने कभी तुम्हारी बात टली तो नहीं है। यह कौन सी बड़ी बात है जो मैं न करूँ? मैं तुम्हारे घर पर पहले भी जने की इच्छा करता था पर मालूम नहीं क्यों नहीं जा सका। एक अजनबी व्यक्ति का किसी के घर में बिना पूछे ही चला जाना भी तो उचित नहीं है। एक बात और भी है कि मुझे तुम्हारे घर जाने में जरा संकोच मालूम होता है। यदि पहले भी मैं जाया करता तब कोई बात न थी, पर मैं आज सर्वप्रथम वहाँ जा रहा हूँ। इसीलिये सबसे पहले किसी के यहाँ जाने में सहस नहीं होता। जब तुम कहती हो तो मैं तुम्हारी बात न मानूँ यह भी अच्छा नहीं दीखता। फिर भी मैं तुम्हारे साथ अवश्य जाऊँगा और कभी से कम यदि विवाह के बारे में चर्चा हुई तो उसे निश्चय करके लौटूँगा।” लता और भी अधिक प्रसन्न होती हुई बोली—“मेरे राजा! आप सकोच बिल्कुल मत करें, जब कि मैं आपके साथ हूँ। मैं भी तो यही चाहती हूँ कि आप मेरे साथ चलें। चलिये तो फिर अब देर ही क्यों?”

अब उमेश जिन्दगी में पहली बार लता के साथ उसके घर पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर लता उसे अपने कमरे में ले गई और उमेश के आगमन का समाचार माँ को कह सुनाई। उस समय उसकी माँ रसोई-घर में खाना बनाने के काम में संलग्न थी। वह उठी और लता के साथ

उमेश के पास पहुँची। लता ने उमेश को अपनी माँ का परिचय दी। उमेश उठ खड़ा हुआ और लता की माँ को अभिवादन करता हुआ पुनः अपनी जगह पर बैठ गया। लता वहाँ से रसोई घर में चली गई और खाना बनाने के काम में लग गई। वह अपने मन में यह सोचने लगी कि वह उमेश को अपने कोमल हाथों द्वारा खाना बनाकर खिलायेगी। वह बड़े प्रेम से खाना बनाने में तल्लीन थी। उधर लता की माँ और उमेश में वार्त्तालाप चल रहा था। लता की माँ ने स्वीकार कर ली कि वह अपनी लड़की लता का विवाह उमेश के साथ कर देगी। उसने उमेश को यह भी बता दी कि उसका घर भी वह उमेश के नाम से ही वसीयतनामा कर देगी। इसके अतिरिक्त घर की अन्य सभी वस्तुएँ वह उमेश को दे देगी। अब वह सिर्फ ईश्वर के भजन में ही दिन बितायेगी और इससे अधिक वह कुछ भी नहीं चाहती। उमेश ने लता की माँ को ऐसा कहने और करने से साफ इन्कार कर दिया और साथ-साथ उसने यह भी वचन दिया कि वह लता को जीवन पर्यन्त अपना साथ न छोड़ेगा। अब लता की माँ भी भाँप गई कि अपनी लड़की को उमेश के साथ शादी कर देने में किसी भी बात का खटका नहीं है। उमेश ने अपनी आन्तरिक इच्छा बता दी कि उसकी परीक्षा समाप्त होते ही वह लता को धर्मपत्नी समझेगा और इसका साक्षी ईश्वर होगा। इतना हो चुकने पर वह लता को अपने साथ घर ले जायगा और तब घर के कामों में वह अपनी सास को यथाशक्ति सहायता देगी। अब लता की माँ भी इस विचार में सहमत हो गई। कुछ देर बाद लता रसोई घर से उठ कर माँ के पास चली आई और खाना तैयार होने की सूचना दे दी। माँ उठकर रसोई घर में चली गई और उमेश के लिये खाना परोसने लगी। लता की माँ ने उमेश को खाना खाने के लिए चलने को कहा। पहले तो उमेश ने अनिच्छा प्रकट की पर लता की माँ द्वारा आग्रह किये जाने पर वह किसी तरह जाने को तैयार हुआ। खाना खाने के पश्चात् उमेश पुनः अपनी जगह पर वापस आया। फिर लता की माँ और उमेश में बात-चीत

चलने लगी। अंत में यही तय हुआ कि परीक्षा समाप्त होते ही उमेश लता की माँ के घर में आकर लता से वैवाहिक संबंध जोड़ेगा। अब उमेश उठा और नम्रता-पूर्वक लता की माँ को प्रणाम करके होस्टल की ओर चल पड़ा।

उमेश कल परीक्षा में बैठने ही वाला था और आज उसने पत्र लिखकर पिता के पास घर भेज दिया। उसमें यही लिखा था कि वह परीक्षा के समाप्त होते ही लता के साथ घर पहुँच रहा है। उसने यह भी लिख दिया कि लता की माँ विवाह का संबंध जोड़ने के लिये सहर्ष तैयार है। उसकी परीक्षा के समाप्त होने के पूर्व ही उसके घर से जवाब भी आ गया। उसमें यही लिखा था कि उमेश जो भी काम करे सोच-विचार कर और भविष्य का ख्याल रखते हुए करे। उसके पश्चात् उमेश ने फिर जवाब में लिख भेजा कि इस कार्य में वह गलत रास्ते पर नहीं है। उसके दिल में हमेशा लता ही याद आती थी और वह उससे मिलने के लिये सदैव उत्सुक रहा करता था। ज्यों-ज्यों विवाह का दिन निकट आने लगा त्यों त्यों उमेश की लता से मिलने की चाह बढ़ती जाने लगी। अब वह पहले से और भी अधिक उत्साहित दिखाई देने लगा। किसी तरह वह परीक्षा से छुटकारा पाया और तब उसने एक ठंडी साँस ली। अब उसे तनिक भी संदेह नहीं रह गया कि लता अब उसकी नहीं है। उसके सिर से पढ़ाई का एक बहुत बड़ा बोझ हट गया और अब वह निश्चित हुआ। उसने विचारा कि कल वह लता के घर पर जायगा। दूसरे दिन सबरे उसने सोचा कि वह कुछ खरीद कर ले जाय, पर ऐसा करना उसे उचित न जँचा। दोपहर को उमेश लता के घर पहुँच ही गया। लता की माँ ने उसे बड़ी आव भगत की। लता की माँ ने फिर विवाह की चर्चा छेड़ दी। उमेश ने कुछ वस्तुएँ खरीद लाने की इच्छा प्रकट की। पहले तो लता की माँ ने ऐसा करने के लिए मना कर दी, पर उमेश थोड़ी देर में आने का वादा कर बाजार की ओर चला गया। वहाँ उसने लता के लिए कुछ रेशमी साड़ियाँ और शृङ्गार के कुछ सामान

खरीद कर पुनः लौट आया। जब वह आ पहुँचा तो लता की माँ ने उन वस्तुओं को बड़े गोर से देखी और साथ-साथ उमेश के इस कष्ट के लिये कृतज्ञता का भाव प्रकट की। इसके पश्चात् कुछ देर में आने का वचन देकर वह घर से बाहर निकल पड़ी। अब लता से नहीं रहा गया। वह दूसरे कमरे में से निकल ही पड़ी और उमेश के पास चली गई। इस बार लता शर्म से इतनी गड़ गई थी कि उसके मुँह से शब्द ही नहीं निकलते थे। अच्छा मौका देख कर उमेश भी लता को खूब चिढ़ाने लगा और उसे लज्जित देख मन ही मन मुग्ध हो गया। लता फिर दूसरे कमरे में चली गई और कुछ देर पश्चात् उसकी माँ पुरोहित महाशय को लेकर वहाँ आ पहुँची। उस समय सध्या हो ही रही थी। लता की माँ द्वारा विवाह की सारी बातें सुनने के पश्चात् पुरोहित भी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने दोनों प्रेमी-प्रेमिका को चिरायु होने का आशीर्वाद भी दिया। बस् फिर क्या था? रात के समय विवाह के कुछ मुख्य कर्म किये गये और उमेश ने लता की माँग में सिंदूर चढ़ा कर विवाह का कार्य सम्पन्न किया। इस समय लता सचमुच ही दूसरी ही लता हो गई थी। उसे अब लता कहना नहीं सुहाता; बल्कि नव-वधू कहना कहीं अच्छा लगता है। सिंदूर से भरी हुई माँग की शोभा से लता का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ गया। एक तो लता ऐसा भी अत्यन्त रूपवती थी अब नई साड़ी के पहनने तथा सिन्दूर से सिर को रँगाने से तो उसके रूप का वर्णन करना कोई मामूली बात न थी। उसके बारे में इतना ही कहना उचित होगा कि उसकी सुन्दरता की कल्पना एक कवि ही कर सकता है।

उमेश ने अपने सामानों को निश्चित समय में उसके घर पहुँचाने के लिए पहले से ही एक परिचित व्यक्ति के जिम्मे लगा दिया था। उसने विवाह की रात्रि को लता की माँ के घर में ही बिताया। दूसरे दिन वह तड़के ही उठ गया और स्नानादि से निवृत्त होकर लता के साथ अपने घर चलने के लिए तैयारी करने लगा। इस समय लता और उसकी माँ भी उठ गई थी। लता की माँ फिर कुछ देर के लिए बाहर गई और पालकी के साथ कहार भी लेती आई। लता पालकी में बैठा दी गई और उमेश

ने अपनी सास से विदा माँगी। इस प्रकार लता पालकी में थी और उमेश साइकिल पर सवार था। इस समय शहर के कुछ ही व्यक्ति जाग गये थे, पर बहुत से तो अभी निद्रा में ही थे।

दोनों वर-वधू आगे-पीछे करके शिवपुर ग्राम जा रहे थे। गाँव के निकट वाले आम के एक बहुत बड़े बगीचे में वे लोग पहुँच गये। उसी बगीचे से होकर शिवपुर ग्राम का रास्ता गया था। उमेश को यह पसन्द न आया कि वह लता को पालकी में ही घर तक जाने दे। अतः पालकी भी वहाँ रोक दी गई और उमेश ने लता को पालकी में से बाहर निकलने को कहा। जब लता बाहर निकल आई तो उमेश ने कहागों को कुछ दे कर प्रस्थान किया। अब दोनों दम्पति पैदल यात्रा करते हुए घर के मुख्य दरवाजे तक पहुँच गये। रस्ते में कई लोगों ने सोचा कि उमेश विवाह करके बहू को घर में ले जा रहा है। यह खबर गाँव भर में बिजली की तरह फैल गई। गाँव की कुछ स्त्रियाँ भी ठाकुर साहब के घर पहुँची। तबतक उमेश भी घर पहुँच ही गया और माँ-बाप को प्रणाम किया। गाँव की स्त्रियाँ ठकुराइन से कहने लगीं—“ठकुराइन ! आपने तो हमलोगों को विवाह की सूचना तक न दी। बिना दावत में शामिल हुए हमलोग जान छोड़ने वाली नहीं हैं। आप समझती होंगी कि थोड़े खर्च में ही काम चल जायगा पर हमलोगों की एक बात रखे बिना आपको चैन कहाँ ?” ठकुराइन बोली—“खैर, तुम लोग इसकी चिंता मत करो। गाँव भर में एक बहुत बड़ी दावत दी जायगी और तुमलोग भी उसमें शामिल होगी।” इतना कह कर ठकुराइन ने किसी तरह उनसे अपना पिंड छुड़ा ली। पड़ोस की आई हुई स्त्रियों ने जी-भरकर लता को देख लीं और करीब-करीब सबों ने बहू की प्रशंसा कर वहाँ से अपने-अपने घर को चल पड़ीं।

ठाकुर साहब भी उस समय घर में मौजूद थे। उमेश हाथ-पैर धोकर उनके पास गया। ठाकुर साहब ने उमेश से कुशल-मंगल पूछ लिया और फिर वे पूछ बैठे—“बेटा उमेश ! अब तुम्हें ही घर की सारी व्यवस्थाएँ

करनी होंगी। तुम अपनी माँ के मिजाज से पूर्ण परिचित हो। इसके बारे में तुम्हें कुछ भी जहना शेष नहीं रह गया है। मेरा एक मात्र भरोसा अब तुम्हीं पर है और तुम्हें ही इस कार्य की जिम्मेदारी लेनी होगी। इसके साथ-साथ तुम अब जमींदारी के कामों में भी भाग लिया करना। मुझे आशा है कि तुम्हारे रूढ़े मे मैं अब बुढ़ारे में आराम की साँस लेने सन्तुष्ट हूँ सकूँगा।” उमेश ने जवाब दिया—“पिताजी ! अब एम० ए० की पढ़ाई के लिए दो ही वर्ष तो रह गए हैं। यदि आप उसे भी पूरा करने दें तो मैं और आगे बढ़ने की इच्छा नहीं करता। मुझे भी मालूम है कि मुझे भी आपके कामों में अपना हाथ बँटाना है। आपकी आज्ञा के बिना मैं कर भी तो कुछ नहीं सकता।” ठाकुर साहब बोले—“बेटा ! पहले तो नतीजा निकलने दो, बाद में जैसा उचित होगा किया जायगा।” उमेश ने कहा—“हाँ पिताजी ! पास करने की सूचना जब तक न पा जाऊँ तब तक आगे पढ़ने की इच्छा करने से ही तो नहीं हो सकता।

इस समय परीक्षा के बाद उमेश को लक्ष्मी लुट्टी मिली थी। वह अब बेटे-बेटे घर का कार्य भी देखने लगा था। उसने सोचा कि सर्वप्रथम माँ के विचारों में कुछ न कुछ परिवर्तन कर देना आवश्यक है। अकेले उमेश के कहने से ही यह कार्य होना असंभव था। उसने लता को घर की परिस्थिति के बारे में अवगत कराया। उसने अपनी माँ के स्वभाव में परिवर्तन करने का भार लता को सौंप दिया। लता भी अपढ़ स्त्री न थी। वह थोड़े में ही सारी बातों को समझ गई। वह अपने आप यह भी महसूस करने लगी कि अब वह भी एक मामूली औरत नहीं है, बल्कि एक बड़े जमींदार की पतोहू है। चंद दिनों में ही ठकुराइन के विचार बदलने लग गये। ठाकुर साहब भी ताड़ गये कि घर में लक्ष्मी जैसी पतोहू के आगमन से परिस्थिति कुछ काबू में आती हुई दिखाई देती है। एक दिन उमेश अपने पिता के सम्मुख आकर बोल उठा—“पिताजी अब शायद आपको मालूम हो गया होगा कि मैंने लड़की चुनने में कोई भूल न की। मैं तो

घर की उलभन को पहले से बहुत कुछ सुलभती हुई दशा में पता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि कुछ ही दिनों के अन्दर घर की और भी बाकी समस्याएँ आप से आप सुलभ जायँगी।” ठाकुर साहब बोले—“हाँ बेटा ! भला विद्वान और अपढ़ व्यक्ति के विचार एक हो सकते हैं ? ईश्वर करे तम दोनों पति-पत्नी को खुशहाल रखे। यही तो घर की मुख्य उलभन थी और तुम्हारी माँ के स्वभाव में परिवर्तन हो जाने से सभी कार्य अच्छे ढंग से होते हुए नजर आते हैं।

उमेश को परीक्षा में उत्तीर्ण होने का खबर मिला। इसके उपलब्ध में उसने अपने पुराने साथियों में मिठाई भी बाँटी। विवाह का प्रीति-भोज भी बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। कुछ महीनों पश्चात् लता को पास होने की सूचना मिली। लता यह समझती थी कि उसके स्वामी एम० ए भी पढ़ लेना चाहते थे। आगे पढ़ना तो अच्छा ही था, पर घर में ठाकुर साहब के अतिरिक्त पुरुष कोई न होने से उमेश को घर में रहना अनिवार्य था। उसने उमेश को आगे पढ़ने जाने से रोक दी। उमेश लता की एक भी बात नहीं काट सकता था। दूसरी बात यह भी थी कि अब उमेश कुर्बान भी तो नहीं रह गया था। उसे तो अब अपने कार्य से अधिक अपनी स्त्री लता की ही चिंता बनी रहने लगी थी। लता को छोड़कर वह कहीं जा भी नहीं सकता था। उस पर भी दो वर्ष लता के बिना यह किस प्रकार व्यतीत कर सकता था। उसके लिये वह असंभव की बात थी। उमेश ने लता जैसी अनाथ बालिका का उद्धार करके अपने जीवन को सार्थक बनाया। लता को अब किसी भी बात की तकलीफ न थी। इस प्रकार दोनों पति-पत्नी अनुपम सुख का लाभ उठाते हुए जीवन यापन करने लगे और इन्हीं दोनों ने मिलकर घर की उलभन को आगे बढ़ने से रोक दिया।

